Success Pana Chahte Hai . Com

मृदा एवं जल प्रबंधन

विषय सूची (CONTENTS)

क्रमांक	अध्याय	पृष्ठ संख्या
मृदा		
1	मृदा	01
2	मृदा निर्माण की प्रक्रिया	01 – 02
3	मृदा के निर्माण एवं स्वरूप को प्रभावित करने वाले कारक	02 – 03
4	मृदा अवयव	03 – 05
5	नवीन मृदा वर्गीकरण	05 – 06
6	मृदा परिच्छेदिका	06
7	मृदा के भौतिक, रासायनिक एव जैविक गुण	07 – 14
8	रासायनिक गुणों के आधार पर मृदा का वर्गीकरण	14 – 15
9	लवणीय एवं क्षारीय मृदाओं का विकास	15 – 16
10	मृदा में आवश्यक पोषक और लाभदायक तत्व	16 – 19
मृदा अपरदन		
11	मृदा अपरदन के कारण एवं प्रकार	20 – 22
12	मृदा अपरदन को प्रभावित करने वाले कारक एवं रोकथाम के उपाय	22 – 24
13	मृदा अपरदन के प्रभाव	24 – 25
जल प्रबंधन		
14	जल संरक्षण के उपाय	26 – 29
15	जल संरक्षण हेतु तकनीकें	29 – 32
सिंचाई		
16	सिंचाई के लिए पानी के स्रोत	35 – 36
17	सिंचाई की विधियां	36 – 39
18	जल निकास	39 – 42
पेयजल और आपूर्ति		
19	जल सम्बन्धी कार्यक्रम	42 – 45

आकार I A S
Shaping your Dreams...
146, SUNDARAM COMPLEX, BHANWARKUAN, INDORE
e-mail : aakarias2014@gmail.com ; **Website :** www.aakarias.com
CONTACT : 9713300123, 9522999951

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

❒ मृदा

- **2016**

1) मध्य प्रदेश में मिट्टी के प्रकारों, उनकी विशेषताओं तथा उनके विवरण का विस्तृत विवरण दीजिए।

- **2015**

1) भारत में मिट्टियों के प्रकार एवं उनका वितरण बताइए।

- **2014**

1) मीडो (चारागाही) मृदा की विशेषताएं और उसके बनने की प्रक्रिया की विवेचना कीजिए।

- **2012**

1) मृदा विन्यास एवं मृदा संरचना।

❒ जल प्रबंधन

- **2016**

1) मध्य प्रदेश में नहर सिंचाई के विकास के प्रतिकूल कारक क्या हैं?

2) भू-जल पुनर्सम्भरण (Recharge) और नि:स्राव (Drift) के प्रमुख कारकों का वर्णन करते हुए गंगा, नर्मदा और कृष्णा नदी क्षेत्र में भू-जल संसाधन क्षमता का संक्षिप्त वर्णन करें।

3) मध्य प्रदेश में पीने के पानी के स्रोतों और उपलब्धता का संक्षिप्त ब्योरा दें।

4) भारत में सिंचाई के प्रकार और उसके वितरण पैटर्न पर प्रकाश डालिए और देश के कृषि विकास में उनकी भूमिका भी लिखिए।

- **2015**

1) तवा घाटी परियोजना का मूल्यांकन जल प्रबन्धन की दृष्टि से कीजिए।

- **2010**

1) गंगा बचाओ आन्दोलन।

Shaping Your Dreams
IAS

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

मृदा
Soil

❒ मृदा (Soil)

Soil शब्द लैटिन भाषा के शब्द सोलम (Solum) से लिया गया है, जिसका तात्पर्य पृथ्वी की ऊपरी सतह से है। **डाकु चैव** को मृदा विज्ञान का जनक कहा जाता है। **ब्रुकमैन** तथा **ब्रेडी** के अनुसार मृदा पृथ्वी की सबसे ऊपरी परत होती है, जिसमें पौधों को उगाने के लिए सभी उचित परिस्थितियां उपस्थित रहती हैं तथा यह परत खनिजों, कार्बनिक तथा जैविक पदार्थों से मिलकर बनी होती है। मृदा का निर्माण इन्हीं खनिज पदार्थों के टुटने-फुटने और कार्बनिक पदार्थों के सड़ने-गलने से होता है। मृदा एक खुला तंत्र होती है, जिनमें पदार्थ मिलाए जा सकते हैं या निकाले जा सकते है। यह जीवों का आधार है, अत: किसी ने ठीक ही कहा है -

SOIL - Stratum/Soul of Infinite Life

- **आवरण प्रस्तर (Regolith)**

यह नीचे स्थित शैल (Bed Rock) के ऊपर ऋतुक्षरित चट्टानों का टूटा-फूटा हिस्सा तथा मृदा पदार्थ होता है। यह शैल का ही ऋतुक्षरित पदार्थ या वायु, जल, वर्षा आदि के द्वारा परिविहित पदार्थों का शैल पर जमा होने से बनता है।

- **रेगोसॉल (Regosol)**

निश्चित आनुवांशिक संस्तरों विहिन मृदा जो बालु, लोएस तथा ग्लेसियन ड्रिफ्ट, जैसे - गहरी, ढ़ीला-ढ़ाला मुलायम खनिज पदार्थों का जमा होता है, रेगोसॉल कहलाता है।

❒ मृदा निर्माण की प्रक्रिया

मृदा का निर्माण चट्टानों के अवक्षय से बने पैतृक पदार्थों से होता है। मृदा निर्माण की प्रक्रिया से मृदा के विशेष प्रकार के स्तर का निर्माण होता है। मृदा निर्माण की मुलभूत प्रक्रियाएं निम्नलिखित हैं -

1) **ह्यूमिफीकेशन (Humification)** - मृदा की ऊपरी सतह पर एकत्रित पत्तियों तथा पौधों के अन्य भाग एवं मृतक जन्तु मृदा कार्बनिक पदार्थों का स्रोत है। इन कार्बनिक पदार्थों के विच्छेदन तथा नवीन कार्बनिक पदार्थों के संश्लेषण के संयुक्त प्रक्रम को ह्यूमिफीकेशन कहते है, जो ह्यूमस बनने की प्रक्रिया है। यह क्रिया मृदा की सतह पर ह्यूमस परत, जिसे O - संस्तर कहते है, बनाने में सहायक होती है। यह परत मुख्यत: जंगली क्षेत्रों में पाई जाती है।

2) **निक्षालन तथा निक्षेपण (Eluviation & Illuviation)** - इस प्रक्रिया में मृदा की ऊपरी सतह के अवयव विलयन (Solution) या निलंबन (Suspension) के रूप में ऊपरी सतह से निचली सतह में चले जाते है या बह जाते है, अर्थात् - अवयवों का मृदा की ऊपरी सतह से निकलना निक्षालन (Washing out) कहलाता है। इसीलिए ऊपरी सतहों को निक्षाली संस्तर भी कहते हैं। A - संस्तर से निक्षालित पदार्थ B - संस्तर में एकत्रित हो जाते हैं। इस प्रकार मृदा पदार्थों का निचली सतहों में जमा होना निक्षेपण (Washing in) कहलाता है।

3) **संस्तरीकरण (Horizonation)** - मृदा में सभी संस्तरों (Horizons) का विकास होना संस्तरीकरण कहलाता है।

4) **कैल्सीफीकेशन/डिकैल्सीफीकेशन (Calcification/Decalcification)** - कैल्सीफीकेशन का तात्पर्य है, मृदा परिच्छेदिका (मुख्यत: B - संस्तर के नीचले भाग) में $CaCO_3$ का जमा होना। यह $CaCO_3$ अघुलनशील होता है, जिससे की इसकी मात्रा लगातार बढ़ती जाती है। यह क्रिया मुख्यत: कम वर्षा वाले क्षेत्रों में तथा मृदा के पैतृक पदार्थों में क्षारों की अधिक मात्रा के कारण होती है। इसी प्रकार लीचिंग द्वारा मृदा से $CaCO_3$ का हटना डिकैल्सीफीकेशन कहलाता है।

5) **पोडजालीकरण (Podzolization)** - पोडजालीकरण निक्षालन का एक प्रकार है, जिसमें ह्यूमस एवं Sesquiozxides गतिशील होकर ऊपरी संस्तर से Leach होकर निचली संस्तर में जमा होते हैं। इस प्रक्रिया में सम्पूर्ण मृदा का निक्षालन होता है, जिससे A - संस्तर से कैल्शियम के अलावा सेस्क्वी-ऑक्साइड Sesquioxide (Fe, Al) भी मृदा निकल जाते हैं, जिससे सम्पूर्ण मृदा स्पष्टत: अम्लीय बन जाती है। फलस्वरूप A - संस्तर रंगहीन या राख जैसा दिखता है, जिसे पोडजाल कहा जाता है। यह क्रिया मुख्यत: ठंडे एवं नम प्रदेशों में होती है। इसके लिए कार्बनिक अवशेषों का आधिक्य तथा पैतृक पदार्थों में क्षारों की कमी होना चाहिए।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

6) **लेटेराइजेशन (Laterization)** - यह पोडजालीकरण के विपरित प्रक्रिया है। Later एक लैटिन शब्द है, जिसका अर्थ ईंट या खपड़ा (Brick or Tile) होता है। जब मृदा में एक विशेष सीमेंटेड संस्तर सुखकर ईंट की तरह कठोर हो जाता है, तो इस प्रक्रिया को लेटेराइजेशन कहते है। इससे निर्मित मृदाएं लाल रंग की होती है। इस प्रक्रिया में ऊपरी सतह से सेस्क्वी-ऑक्साइड (Fe, Al) के बदले सिलिका (Si) निकल जाता है और मृदा में Fe, Al की मात्रा बढ़ जाती है। जब मृदा में सेस्क्वी-ऑक्साइड की मात्रा कुल द्रव्यमान के 70 से 80 प्रतिशत होती है, तो उसे लेटेराइट मृदा कहते है।

7) **ग्लाईकरण (Gleization)** - Glei रशीयन शब्द है, जिसका अर्थ नीली या हरी चिकनी मिट्टी होता है। Glei का विकास मुल द्रव्य के ऊपर मृदा परिच्छेदिका के नीचले भाग में जल निकास की कमी एवं जल-मग्नता के कारण होता है। ऐसी मिट्टीयां हाइड्रोमोर्फिक मृदा कहलाती है। यह जलवायु पर निर्भर न होकर प्राय: जल निकास की दशा पर निर्भर करती है।

8) **लवणीकरण एवं क्षारीयकरण (Salination/Alkalization)** - मृदा में घुलनशील लवणों का जमा होना लवणीकरण कहलाता हैं तथा अधिक विनिमयशील Na^+ का मृदा में जमा होना एवं उसका pH मान 8.5 से अधिक होना क्षारीयकरण कहलाता है। सोलोनाइजेशन में मृदा की भौतिक दशा खराब हो जाती है तथा कार्बनिक पदार्थ काल आवरण बनाता है। अत: इसे काली क्षारीय मृदा (Black Alkali Soil) भी कहते है।

❐ मृदा के निर्माण एवं स्वरूप को प्रभावित करने वाले कारक (Factors of Soil Formation)

विभिन्न मृदाओं में स्थानीय तथा क्षेत्रीय स्तर पर पर्याप्त विभिन्नताएं दिखाई देती है। मृदा की यह विभिन्नता कई कारकों पर निर्भर करती है। इन सभी कारकों का मृदा निर्माण में समान महत्व नहीं होता। यद्यपि कुछ कारक दूसरों की अपेक्षा मृदा के निर्माण तथा स्वरूप का निर्धारण करने में अधिक प्रभावशाली हो सकते हैं, परन्तु सभी का परस्पर सम्बन्ध रहता है और वे एक-दूसरे के पूरक होते हैं। मृदा के स्वरूप तथा निर्माण को प्रभावित करने वाले कारक निम्नलिखित है-

1) **तापमान** - तापमान में प्रत्येक 10°C की वृद्धि होने से रासायनिक क्रियाओं की गति लगभग दुगुनी हो जाती है। सामान्य रूप से अधिक ताप पर अपक्षय क्रिया तेजी से होती है और क्ले का जमाव भी अधिक मात्रा में होता है। यद्यपि अधिक ताप पर कार्बनिक पदार्थों के विच्छेदन की दर भी बढ़ जाती है तथा ताप में प्रत्येक 10°C की कमी होने से मृदा में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा लगभग दुगुनी हो जाती है। ताप मृदा के रंग को भी प्रभावित करता है। साधारणत: लाल मृदाएं उष्ण (Tropics) में और भूरी मृदाएं समशीतोष्ण (Temperate) क्षेत्रों में होती हैं। पैतृक चट्टान तथा वर्षा में समानता होने पर भी ताप के अन्तर से दो क्षेत्रों में लगभग अलग-अलग प्रकार की मृदा प्रोफाइलों का विकास होता है।

2) **वर्षा या आर्द्रता** - नमी, जलवायु के प्राथमिक तत्वों में से प्रधान है, जो मृदा निर्माण में भाग लेती है। वर्षा जल की कुल मात्रा के अतिरिक्त वर्षा का वितरण तथा प्रचण्डता भी महत्वपूर्ण है। जल प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों प्रकार से मृदा निर्माण में भाग लेता है। मृदा में उपस्थित नमी विलयन, जलयोजन तथा जल विश्लेषण आदि क्रियाओं के द्वारा खनिज पदार्थों तथा जीवमण्डल से प्राप्त कार्बनिक पदार्थों से प्रतिक्रिया करती है। जल की मात्रा अपरदन तथा अन्त:स्रवण दोनों को प्रभावित करती है। अन्त:स्रवण के द्वारा मृदा में निक्षालन तथा निक्षेपण क्रियाएं होती हैं, जो संस्तरों के विकास को प्रभावित करती है। रेगिस्तान में वर्षा की कमी के कारण संस्तरों में भेद नहीं होता है। सामान्य रूप से वर्षा के बढ़ने के साथ-साथ मिट्टी में नाइट्रोजन और कार्बन की मात्रा बढ़ती है। उसमें क्ले की मात्रा में भी वृद्धि हो जाती है। मृदा में जल की वृद्धि होने पर मृदा में विनिमेय हाइड्रोजन की मात्रा में भी वृद्धि होती है तथा मृदा की अम्लीयता बढ़ जाती है।

3) **चट्टानों का स्वरूप** - मृदा के निर्माण तथा वितरण में चट्टानों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। चट्टानों के स्वरूप से ही मृदा की प्रकृति निर्धारित होती है। मृदा में विभिन्न तत्वों की मात्रा चट्टानों पर निर्भर करती है। कालक्रम के दृष्टिकोण से प्रकृति में चट्टानों में पर्याप्त विभिन्नता पाई जाती है, जिससे विभिन्न क्षेत्रों की मिट्टियों में भी अपनी पैतृक चट्टानों के अनुरूप विभिन्न तत्वों की विभिन्नता दिखाई देती है, जैसे - बेसाल्ट क्रम की चट्टानों से काली मिट्टी का निर्माण होता है, तो वहीं ग्रेनाइट व नीस की चट्टानों से लाल मिट्टी का निर्माण होता है।

4) **वनस्पति** - पौधों की जड़े चट्टानों तथा खनिजों पर यांत्रिक रूप से क्रिया करती है। ये अनेकों प्रकार से अम्लीय पदार्थ तथा CO_2 उत्पन्न करती हैं, जो अपक्षय की क्रिया में सहायक होते हैं। मृतक वनस्पतिक पदार्थों के ह्यूमिफिकेशन तथा खनिज से

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

कार्बनिक तथा अकार्बनिक अम्ल पैदा होते हैं। ये अम्ल आयरन और एल्यूमिनियम को विलेय कर लेते हैं तथा यह दोनों लीचिंग द्वारा 'B' संस्तर में जमा हो जाते हैं। ह्यूमस पौधों के पोषक तत्वों का भण्डार गृह है, ये पोषक पौधों की जड़ों द्वारा नीचे से लाकर मृदा की सतह पर एकत्रित कर दिए जाते हैं। वनस्पति जलवायु को भी प्रभावित करती है, वनों के प्रभाव से ताप कम तथा नमी अधिक हो जाने से जलवायु मृदु हो जाती है। वन मृदा अपरदन को भी रोकते हैं।

5) **जैविक कारक** – मृदा के निर्माण तथा स्वरूप के निर्धारण में जैविक कारकों का महत्वमपूर्ण योगदान होता है। इसके अन्तर्गत सूक्ष्म जीव तथा कुछ अन्य जंतु आते है, जो मृदा में कार्बनिक पदार्थों में वृद्धि करते हैं। मृदा को खोदने वाले अनेक जन्तु, जैसे – केंचुआ, रोडेन्ट्स, दीमक तथा चीटिंयां आदि मृदा को खोदकर, महीन कर देते है। सूक्ष्म जीवों की सक्रियता खनिज एवं कार्बनिक पदार्थों के विच्छेदन को प्रभावित करती है तथा प्रोफाइल निर्माण के लिए कच्चा पदार्थ प्रदान करती है। वायुमण्डल की नाइट्रोजन को राइजोबियम नामक कुछ जीव नाइट्रेट में बदलकर मृदा में इसकी वृद्धि करते है। सल्फर का ऑक्सीकरण और फॉस्फेट चट्टान का विच्छेदन भी सूक्ष्म जीवों द्वारा होता है।

मृदा निर्माण में मनुष्य भी एक मुख्य कारक है। वह मृदा में खाद मिलाकर, जल निकास को सुधारकर, चूना मिलाकर तथा अन्य क्रियाओं से उसे कृषि योग्य बना देता है। अत्यधिक खेती करने से मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा कम हो जाती है। सिंचाई के जल से प्राप्त खनिज पदार्थों से भी मृदा उर्वरता प्रभावित होती है।

6) **वायु** – यह प्रत्यक्ष रूप से वाष्पीकरण की गति को प्रभावित करती है या परोक्ष रूप से मृदा में उपस्थित महीन कणों का स्थानान्तरण करती है, जिससे कुछ स्थानों पर तो कुछ तत्वों का आधिक्य हो जाता है तथा कुछ स्थानों पर इनका अभाव हो जाता है। रेगिस्तान में रेत का वायु के साथ बहने से संस्तरों का निर्माण नहीं होता है।

7) **वाष्पीकरण** – मृदा सतह से नमी का वाष्पीकरण विभिन्न गतियों से होता है, क्योंकि यह वायुमण्डल की आर्द्रता एवं ताप पर निर्भर होता है। नमी के अधिक होने पर वाष्पीकरण कम तथा ताप अधिक होने पर वाष्पीकरण अधिक होता है। वाष्पीकरण की मात्रा एवं गति को मृदा की रचना, संगठन, कणाकार, नमी की मात्रा तथा रंग आदि कारक भी प्रभावित करते हैं।

8) **भूतल रूप (Topography of Relief)** – यह भूमि के तल की अवस्था को बताता है। मृदा अपरदन इसी के ऊपर निर्भर होता है, इसलिए यह मृदा निर्माण को प्रभावित करता है। अपरदन अधिक होने पर गहरी मृदाएं नहीं बनती और न वे कभी परिपक्व हो पाती हैं। यदि अत्यधिक अपरदन से 'C' संस्तर (पैतृक पदार्थ) नीचे से निकल आता है, तो ऐसी दशा में मृदा निर्माण पुनः प्रारंभ होता है। समतल क्षेत्रों में भी जल का बहाव अधिक नहीं हो पाने के कारण तथा अधिक वर्षा से उत्पन्न जल की निकासी न होने पर वहां पूरे साल पानी भरा रहता है। इन दशाओं में मृदा में जल का संश्लेषण अधिक होता है।

भूसंरचना का मृदा निर्माण पर सबसे अधिक प्रभाव पर्वतीय प्रदेशों में देखा गया है। यहां पर प्राकृतिक अपरदन द्वारा मृदा प्रोफाइल के ढाल का ऊपरी प्रदेश उथला रहता है। इसके अतिरिक्त तापमान भी भूमि तल की ऊंचाई पर निर्भर करता है। प्रत्येक 165 मी. की ऊँचाई पर जाकर ताप में 1°C की कमी आ जाती है। निम्न ताप पर वाष्पीकरण की दर कम होने से लीचिंग अधिक होती है, इसलिए उच्च स्थलीय प्रदेशों की मृदा अधिक अम्लीय होती है।

9) **भूमि की आयु (Age of Land)** – अनेक वैज्ञानिकों ने मृदा निर्माण तथा उसके स्वरूप का भूमि की आयु के साथ सम्बन्ध स्थापित किया है। भूमि की आयु वर्षों की अपेक्षा परिपक्वता की स्थिति से आंकी जाती है। मृदा में संस्तरों की संख्या जितनी अधिक पाई जाती है, उतनी ही अधिक परिपक्व मृदा होती है। परिपक्व मृदा में सभी संस्तर पूर्णरूप से विकसित हो जाते है। मृदा के गुण, जैसे – पी–एच, जीवांश पदार्थ, क्ले का संग्रह, ऊपरी सतहों से क्षारों का लीचिंग होकर निम्न सतहों में संचित होना आदि मृदा की आयु से प्रभावित होते हैं। इसके अतिरिक्त ऐसे कई कारक हैं, जो कि मृदा की परिपक्वता में देर करते हैं, जैसे – पदार्थ में कैल्शियम कार्बोनेट की अधिक मात्रा, क्ले की प्रतिशतता, कम वर्षा, कम आर्द्रता, खोदने वाले जंतुओं की अधिक संख्या, जल स्तर उच्च होना तथा बालू की अधिकता आदि।

❐ मृदा अवयव (Soil Component)

मृदा तंत्र में 3 प्रावस्थाएं होती हैं – ठोस, द्रव एवं गैस, परन्तु पौधों को पोषक तत्व प्रदान करने की दृष्टि से केवल ठोस एवं द्रव प्रावस्थाएं ही महत्तवपूर्ण होती हैं। मृदा के ठोस अवयव महिम अवस्था में होते हैं तथा मृदा के अन्य अवयवों से भली–भाँति मिश्रित

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

होते हैं। मृदा आयतन का लगभग 50 प्रतिशत ठोस पदार्थों से घिरा होता है, शेष आयतन को रन्ध्रावकाश (Pore Space) कहते है, जिसमें जल एवं वायु उपस्थित होती है। इस प्रकार मृदा अवयवों में मुख्यत: खनिज पदार्थ, कार्बनिक पदार्थ, जल एवं वायु आते है।

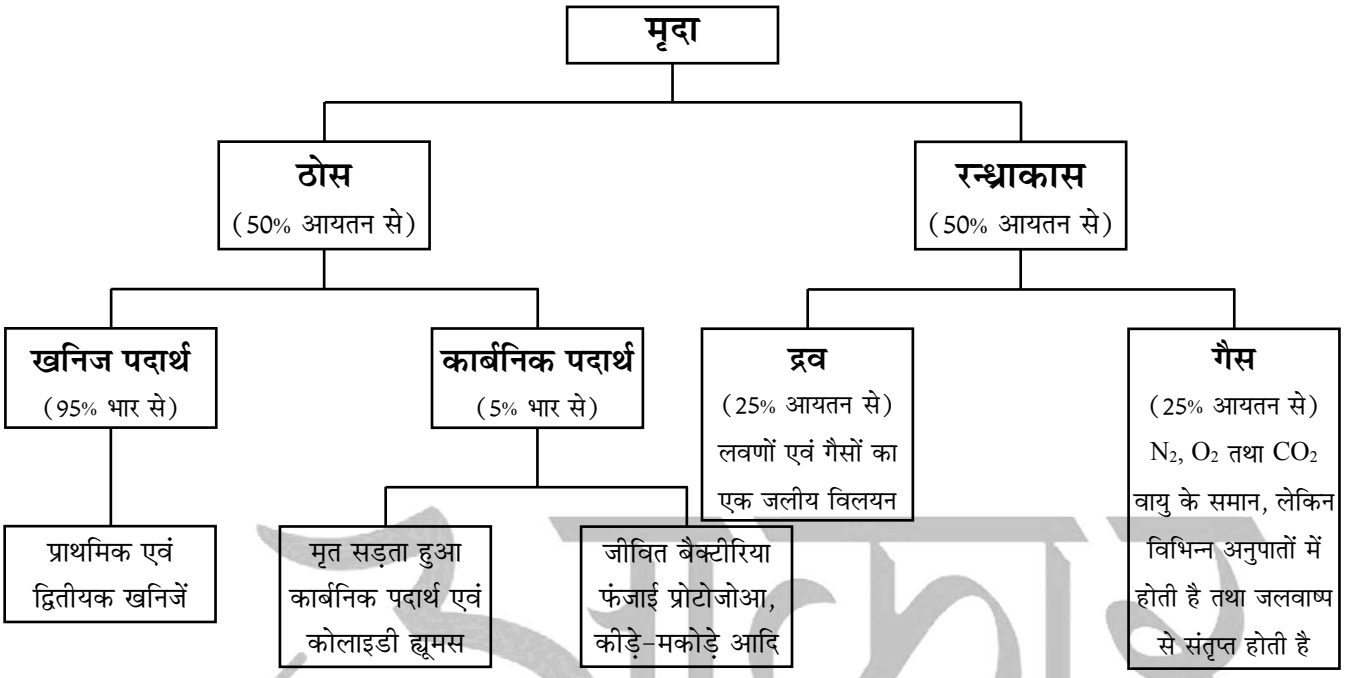

- **खनिज पदार्थ (Mineral Matter)**

ये चट्टानों के अपक्षय से प्राप्त होते हैं। मृदा की ठोस प्रावस्था में खनिज पदार्थ की मात्रा 90 प्रतिशत से अधिक होती है। ये खनिज विभिन्न आकार के कणों के रूप में पाए जाते हैं। कुछ कण बड़े आकार के, कुछ छोटे और कुछ सूक्ष्म आकार के होते हैं। मृदा में पत्थर, कंकड़, मोटी बालू, सिल्ट तथा क्ले का अंश रहता है।

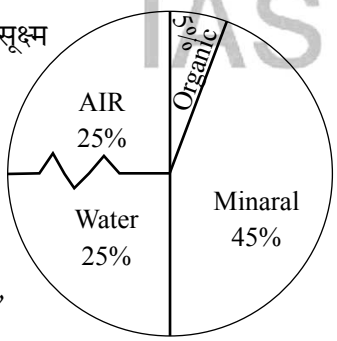

मृदा में पाए जाने वाले खनिज पदार्थों को 2 भागों में बांटा जा सकता है - प्राथमिक खनिज तथा द्वितीयक खनिज। प्राथमिक खनिज कुल मृदा के खनिज पदार्थों का 90 प्रतिशत भाग पूरा करते हैं। इनमें ऑक्सीजन, सिलिकन, ऐल्युमिनियम, तथा आयरन प्रमुख है। द्वितीयक खनिज कुल मृदा खनिजों का 10 प्रतिशत भाग होते है, जिनमें कैल्शियम, मैग्नेशियम, पोटेशियम, सोडियम, नाइट्रोजन, सल्फर, फॉस्फोरस, बोरान, मैगनीज आदि आते है।

नाइट्रोजन मिट्टी में कार्बनिक और अकार्बनिक दोनों रूपों में रहता है। इसका अकार्बनिक रूप नाइट्रेट और अमोनिया के रूप में होता है, जबकि कार्बनिक पदार्थों के सड़ने से भी अमोनिया का निर्माण होता है। फॉस्फेट पौधों के फूल और फल के लिए लाभदायक होता है। पोटेशियम सल्फेट और कार्बोनेट के रूप में मिट्टी में उपस्थित होकर रासायनिक क्रिया में सहायक होता है। इससे न केवल पौधों के पत्ते स्वस्थ रहते है, अपितु उनमें प्रोटीन और शर्करा की मात्रा भी बढ़ती है। कैल्शियम मिट्टी में पौधों के तनों को मजबूत करने के साथ-साथ उसकी अम्लता को भी कम करता है। मैग्नेशियम पौधों में क्लोरोफिल के निर्माण में सहायक होता है। कार्बन, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ तथा जल के माध्यम से पहुंचते है। लोहा मृदा में ऑक्साइड के रूप में रहता है, जो क्लोरोफिल के निर्माण में सहायता पहुंचाता है। क्लोरीन पौधों के पत्तों को बड़ा और मोटा करता है।

- **मृदा कार्बनिक पदार्थ (Organic Matter)**

जंतु एवं वनस्पति पदार्थों के जो अवशेष मृदा में मिलाए जाते हैं या मृदा में ही स्वयं होते हैं, मृदा कार्बनिक पदार्थ कहलाते हैं। कार्बनिक पदार्थ शब्द में ह्यूमस, पौधों की जड़े तथा अन्य भाग आते हैं। इसके साथ-साथ सूक्ष्म जीव, कीड़-मकोड़े अन्य जंतुओं के मृत शरीर तथा मृदा में मिलाए जाने वाला खाद भी कार्बनिक पदार्थ शब्द में आते हैं। यह खनिज मृदा तथा पीट मृदा का एक मुख्य अवयव है। खनिज मृदा में इसकी मात्रा 1 से 5 प्रतिशत तक होती है, जबकि पीट मृदाओं में इसकी मात्रा 20 से 95 प्रतिशत तक होती है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

मृदा में कार्बनिक पदार्थों की प्राप्ति 2 महत्वपूर्ण स्रोतों से होती है- पादप स्रोत एवं जंतु स्रोत। पादप स्रोत के अन्तर्गत पेड़, घास, झाड़ियां, फसलों के अवशिष्ट, हरी खाद की फसलें आदि आते हैं, जबकि जंतु स्रोतों में मृदा में पाए जाने वाले कीड़े-मकोड़े तथा अन्य जंतु आते है। ये जंतु मरने के बाद या फिर उनके अवशिष्ट पदार्थ मृदा के कार्बनिक पदार्थों में वृद्धि करते है।

मृदा कार्बनिक पदार्थ पौधों तथा जंतुओं के अवशेषों से बना एक जटिल पदार्थ है। इन्हें भी 2 वर्गों में वर्गीकृत कर सकते हैं -

1) **नाइट्रोजन युक्त यौगिक (Nitrogenos)** - इन यौगिकों में मुख्यरूप से प्रोटीन्स, न्यक्लियोप्रोटीन्स, पैप्टाइड्स, पेप्टोन्स, प्रोटियोस, एल्केलॉइड्स, प्यूरीन, पिरीडीन तथा पिरीमिडीन यौगिक सम्मिलित होते हैं। ये सभी जल में अविलेय होते हैं। दूसरे प्रकार के यौगिक, जैसे - नाइट्रेट, एमोनिक यौगिक, एमाइड्स, एमीन्स तथा एमीनो अम्ल जल विलेय होते हैं।

2) **नाइट्रोजन रहित यौगिक (Non-nitrogenos)** - इन यौगिकों मे मुख्यरूप से कार्बोहाइड्रेट्स, ईथर विलेय यौगिक तथा फुटकर यौगिक आते है। कार्बोहाइड्रेट में सरल शर्कराएं, जैसे - ग्लूकोज, फ्रक्टोस, सूक्रोज आदि आते हैं, जबकि अविलेय कार्बोहाइड्रेट में सैल्यूलोज आदि सम्मिलित होते हैं। ईथर विलेय यौगिकों में वसा, तेल, मोम, स्टेराइड्स रेजिन्स, तारपीन, रंगीन पदार्थ (Pigments) आदि आते हैं। फुटकर यौगिकों मे लिग्निन, टेनिन्स, वाष्पशील तेल, ग्लाइकोसाइड्स आदि आते हैं।

- **मृदा जल (Soil Water)**

जल मृदा का महत्वपूर्ण भाग होने के साथ-साथ मृदा क्रियाओं और जीवित पदार्थों के जीवन को प्रभावित करने वाला मुख्य कारक है। मृदा निर्माण हेतु चट्टानों के अपक्षय, मृदा पदार्थों के स्थानांतरण, मृदा संरचना तथा मृदा ताप के निर्धारण में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है। मृदा में उपस्थित जल को ही मृदा जल कहा जाता है। मृदा में मृदा जल की प्राप्ति वर्षा, जल का संचयन, अत:स्यंदन आदि से होती है। यद्यपि मृदा में उपस्थित रन्ध्राकाशों का लगभग 25 प्रतिशत मृदा जल से युक्त होता है, परंतु मृदा में जल की मात्रा वर्षा के वितरण, तापमान, वनस्पति आदि कारकों से भी प्रभावित होती है। मृदा में पाए जाने वाले जल को 3 भागों में बांटा जा सकता है -

1) **आर्द्रतावशोषी जल (Hygroscopic Water)** - इस प्रकार का मृदा जल मिट्टी के कणों में आकर्षण द्वारा मिला रहता है, जो मिट्टी के कण के चारों ओर उपस्थित होता है। यह जल मिट्टी की ठोस सतह पर अत्यधिक महीन फिल्मों के रूप में रहता है। मिट्टी से अत्यधिक दृढ़ता से जुड़े होने के कारण यह अचल जल पौधों को भी प्राप्त नहीं हो पाता है।

2) **केशिका जल (Capillary Water)** - यह जल मिट्टी में उपस्थित केशिकाओं में पाया जाता है। मिट्टी के रन्ध्राकाशों में उपस्थित अधिकांश भाग इसी जल से भरा होता है। मिट्टी के कण जितने छोटे होते हैं, केशिका जल की मात्रा उतनी ही अधिक होती है।

3) **गुरूत्वाकर्षण जल (Gravitational Water)** - यह मृदा में उपस्थित जल की वह मात्रा है, जो गुरूत्वाकर्षण के कारण नीचे की ओर बहता है, इसे स्वतंत्र जल भी कहा जाता है। यदि यह जल मृदा में रहने दिया जाए, तो मृदा वायु बाहर निकल जाती है। इस प्रकार ऑक्सीजन के अभाव में श्वसन तथा अन्य जैविक क्रियाओं की गति में बाधा पड़ती है, इसलिए यह आवश्यक है कि अनावश्यक गुरूत्वाकर्षण जल मृदा से बाहर निकाल दिया जाए। इस जल का संचार कार्बनिक पदार्थ की मात्रा, कणाकार तथा मृदा संरचना से प्रभावित होता है। भारी मृदाओं में केवल महीन केशिकाओं की उपस्थिति के कारण जल निकास अच्छा नहीं होता, परन्तु दानेदार मृदाओं में इस जल का संचार भली-भाँति होता है। इस प्रकार मृदा जल पौधों की वृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, परंतु जब धीरे-धीरे मृदा जल कम हो जाता है, तो पौधों की जड़ें पानी का अवशोषण करने में असमर्थ हो जाती है और पौधे सूखने लगते हैं। ऐसी अवस्था में जब मृदा में जल कम होता है, तो पौधों को मिट्टी से जल को खींचने के लिए अधिक मात्रा में शक्ति की आवश्यकता होती है। ऐसी अवस्था में, जो जल मिट्टी में है, उसे म्लानी गुणांक कहते है। इससे मृदा में कोलाइड पदार्थ की मात्रा ज्ञात की जाती है।

❐ नवीन मृदा वर्गीकरण

सर्वप्रथम '**डाकु चैव**' द्वारा तथा उसके बाद 1927 में '**सी. एफ. मार्गन**' द्वारा तथा अंत में 1975 में **मृदा के संस्तर तथा कणों के आधार पर** नवीन वर्गीकरण किया गया, जो इस प्रकार हैं -

- **मृदा गण**

मृदा को कुल 12 गणों में वर्गीकृत किया गया, जिसमें से 10 गण भारत में पाए जाते हैं -

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

- **एल्फीसॉल (Alfisols)** – अम्लीय व नवीन मृदा।
- **एण्डीसॉल (Andisols)** – ज्वालामुखी मृदाएं।
- **एण्टीसॉल (Antisols)** – जलोद मृदाएं (Elluvial Soil), भारत का सबसे बड़ा।
- **हिस्टोसॉल (Histosols)** – कार्बनिक (ऐतिहासिक मृदा) मृदा
- **इनसेप्टीसॉल (Inseptisols)** – नवीन निर्मित मृदा।
- **मोलीसॉल (Molisols)** – समुद्री व रैतीली मृदा (विश्व का सबसे बड़ा)।
- **ऐरिडोसॉल (Aridosols)** – रेगिस्तानी व सुखी मृदा।
- **ऑक्सीसॉल (Oxisols)** – सर्वाधिक ऋतुसरित चट्टान से निर्मित।
- **अल्टीसॉल (Altisols)** – कम पोषक तत्व वाली मृदा (Zooming Cultivator)।
- **वर्टिसॉल (Vertisols)** – काली एवं क्ले मृदाएं या भारी मृदाएं इन्हें फूलने एवं संकुचित टाईप की मृदाएं भी कहते हैं। मध्य प्रदेश में यह गण सर्वाधिक पाया जाता है (47 प्रतिशत)।

❐ मृदा परिच्छेदिका (Soil Profile)

मृदा की सबसे ऊपरी सतह से लेकर निचली चट्टानों तक के भाग को मृदा परिच्छेदिका कहते हैं। मृदा निर्माण की कारक शक्तियों के लंबे समय तक कार्यरत रहने से पृथ्वी के मुल द्रव्य धीरे-धीरे परतों में विभाजित हो जाते है। इन परतों या संस्तरों को मिलाकर मृदा परिच्छेदिका का निर्माण होता है। मृदा परिच्छेदिका में पाए जाने वाले संस्तर सभी स्थानों पर एक समान नहीं होते है। मुल द्रव्य के ऊपर स्थित इन्हीं संस्तरों को एक साथ सोलम (Solum – मृदा) कहा जाता है। मृदा निर्माण प्रक्रिया के उपरान्त बने संस्तरों को 5 शीर्षों में रखा जाता है – O, A, B, C, R ।

- **O संस्तर** – यह कार्बनिक संस्तर होता है, जो मुख्यत: जंगल में पाया जाता है। यह कुंवारी मृदा (Virgin Soil) में उपस्थित होता है, नगरीय मृदा (Arable Soil) में नहीं।
- **A संस्तर** – यह मृदा का सबसे ऊपरी (Regolith) संस्तर है, जिसमें ह्यूमस और कार्बनिक पदार्थ मिला होता है। जिसके कारण यह नीचे के संस्तर की अपेक्षा ज्यादा काला होता है। इसी संस्तर में सबसे ज्यादा निक्षालन होता है। अत: इसे Washing Out Zone कहा जाता है। कृषि कार्य इसी संस्तर में होते हैं, इसलिए इस संस्तर को कृषि संस्तर भी कहा जाता है।
- **B संस्तर** – यह संस्तर अवमृदा (Sub Soil) कहलाता है। इसमें A संस्तर से निक्षालित पदार्थ संचित होते रहते है। अत: इसे Washing in Zone भी कहते है। शुष्क क्षेत्रों में इसी संस्तर में $CaCO_3$, $CaSO_4$ व लवण आदि पदार्थ जमा होते रहते है।
- **C संस्तर** – ये कठोर आधार चट्टानें हैं, जो सोलम (A+B संस्तर) के नीचे स्थित होती हैं। यह संस्तर मुल पदार्थों का बना होता है, जिसमें अनेक पदार्थ अपने मुलरूप में पाए जाते हैं। इस संस्तर में ऋतुक्षरण पूर्ण नहीं हो पाता तथा Ca व Mg के कार्बोनेट्स का संचयन व सीमेंटीकरण भी इसी संस्तर में होता है।
- **R संस्तर** – इस संस्तर में कठोर चट्टानें पाई जाती हैं, जिनमें अपक्षय बहुत कम होता है।

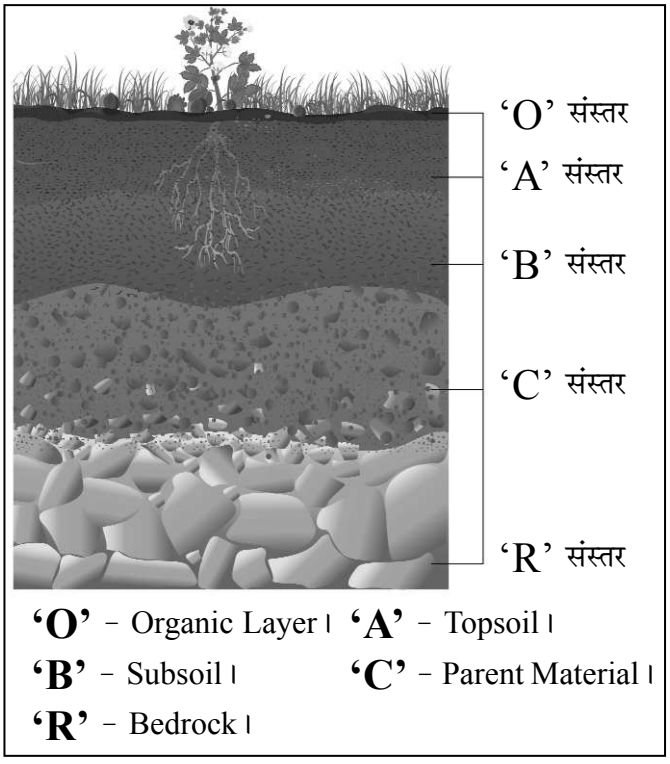

'O' – Organic Layer। **'A'** – Topsoil।
'B' – Subsoil। **'C'** – Parent Material।
'R' – Bedrock।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

❐ मृदा के भौतिक गुण

मृदा अकार्बनिक कणों, विच्छेदित कार्बनिक पदार्थों, वायु एवं जल का एक मिश्रण होती है। मृदा के भौतिक गुण, मृदा के उपयोग तथा पादप वृद्धि के प्रति इसके व्यवहार को प्रभावित करते है। ये गुण पौधों की जड़ों को मृदा में प्रवेश कराने, जल-निकास, नमी धारण आदि में सहायक होते है। मृदा के भौतिक गुण, मृदा के रासायनिक एवं जैविक गुणों को भी प्रभावित करते है। ये गुण मृदा कणों की मात्रा, आकार, आकृति, विन्यास तथा खनिजों के संगठन, कार्बनिक पदार्थों की मात्रा एवं प्रकार, रन्ध्रों का आयतन आदि पर निर्भर करते है। मृदा के भौतिक गुण निम्नलिखित हैं -

- **मृदा वर्ग कण (Soil Separates)**

कणों के विभिन्न वर्गों को मृदा वर्ग कण कहा जाता है, जैसे - कंकड़, बालू (Sand), सिल्ट (Silt) एवं क्ले (Clay)।

1) **बालू** - इस श्रेणी में पत्थर, कंकड़ तथा बालू सम्मिलित है। बालू के कणों का आकार 0.02-2 मिमी से ज्यादा होता है। अपने बड़े आकार के कारण ये अधिक जगह घेरते है, फलस्वरूप मिट्टी की सतह से वाष्पीकरण तथा मृदा अपरदन को रोकते है। बालू अपने कुछ विशिष्ट गुणों के कारण नमी से प्रभावित नहीं होती है। बालू के कणों के बीच बड़े आकार वाले रन्ध्र उपस्थित होने के कारण इसकी जल धारण क्षमता बहुत कम होती हैं, क्योंकि इन रन्ध्रों से होकर जल नीचे चला जाता है।

अन्तर्राष्ट्रीय मृदा विज्ञान विभाग या द्वारा किया गया वर्गीकरण

मृदा कण	आकार मिमी में
मोटी बालू	0.2-2 मिमी से अधिक
महीन बालू	0.02-0.2 मिमी
सिल्ट	0.002-0.02 मिमी
क्ले	0.002 से कम

2) **सिल्ट** - इसके कणों का आकार 0.002-0.02 मिमी तक होता है। ये कण भी अनियमित आकार के होते है। इनके भौतिक गुण रेत और क्ले के बीच होते है। सिल्ट की जल धारण क्षमता बालू से अधिक और क्ले से कम होती है। रेत की अपेक्षा इसमें केशीय रन्ध्र अधिक होते है। फलतः अधिक पानी मृदा में उपस्थित रहता है, जो पौधों की वृद्धि के लिए उपयोगी है। इस वर्ग की मृदा में क्ले की भाँति दरारें नहीं पड़ती और मृदा के सिमट जाने का भी डर नहीं रहता है। इस मृदा में वायु संचार उचित रूप से होता है, जो पौधों की वृद्धि के लिए उचित होता है।

3) **क्ले** - क्ले कणों का आकार 0.002 मिमी से कम होता है। इन कणों की आकृति प्लेट की तरह होती है, जो भिगने पर अधिक चिपचिपी हो जाती है व सुखने पर कठोर हो जाती है, चूंकि इसका आकार बहुत छोटा होता है, इसलिए इसका पृष्ठ क्षेत्रफल अधिक होता है। इस मृदा में रन्ध्रावकाश की मात्रा अत्यधिक होती है, फलतः इसका जल धारण क्षमता अधिक होती है। कणों का आकार बहुत छोटा होने के कारण इस मृदा में जुताई कार्य कठिन व हवा एवं जल का संचार धीमी गति से होता है। यह मृदा की उर्वरकता बालू तथा सिल्ट की अपेक्षा अधिक होती है व इसमें द्वितीयक क्ले खनिज, केओलिनाइट एवं मॉन्टमोरिलोनाइंट की अधिकता होती है।

- **मृदा कणाकार (Soil Texture)**

मृदा खनिज कण विभिन्न आकार के होते है, ये विभिन्न प्रकार के कण बालू, सिल्ट तथा क्ले के होते है। मृदा कणों का आपेक्षिक आकार मृदा कणाकार से व्यक्त किया जाता है। अतः मृदा कणाकार मृदा कणों की महीनता को निर्देशित करता है। इस प्रकार मृदा में विभिन्न मृदा वर्ग के कणों के आपेक्षिक अनुपात को मृदा कणाकार कहते हैं।

कणाकार वर्ग	बालू प्रतिशत	सिल्ट प्रतिशत	क्ले प्रतिशत
बलुई	85-100	0-15	0-10
बलुई दोमट	43-80	0-50	0-20
दोमट	30-40	30-40	40-20
सिल्टी दोमट	0-50	50-88	0-27
सिल्ट	0-20	88-100	0-12
क्ले (मृतिका)	0-40	0-40	40-60

सभी प्रकार की मृदा में बालू, सिल्ट एवं क्ले मृदा वर्ग कण पाए जाते है, लेकिन इनका अनुपात भिन्न-भिन्न होता है। मृदा को इन तीनों मृदा वर्ग कण के अनुपात के आधार पर नाम दिया जाता है, जो इसके कणाकार संगठन को प्रदर्शित करता है। जिस मिट्टी में 85 प्रतिशत से अधिक बालू होता है, उसे बलुई मृदा (Sand Soil) कहा जाता है। जब मिट्टी में सिल्ट 80 प्रतिशत से अधिक हो, तो उसे सिल्टी मृदा (Silty Soil) तथा 40 प्रतिशत से अधिक क्ले होने पर क्ले मृदा कहा जाता है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

1) **क्ले मृदा** - इस मृदा में बालू, सिल्ट, क्ले का प्रतिशत 0-40, 0-40 व 40-60 होता है, इसे भारी मृदा कहा जाता है। इस मृदा में जोतने का कार्य कठिनाई पूर्ण होता है, क्योंकि यह मृदा जुताई यंत्र पर अधिक दबाव डालती है। इसे गीली अवस्था में जोतना कठिन होता है। सूखने पर यह मृदा कठोर, ठोस, कड़ी व गीली होने पर चिपचिपी रहती है। नमी की निश्चित मात्रा रहने पर ही इस मृदा में जुताई कार्य किया जाता है।

2) **बलुई मृदा** - इस मृदा में बालू, सिल्ट, क्ले का प्रतिशत 85, 0-15 व 0-10 होता है, इसे हल्की मृदा कहा जाता है। यह मृदा जुताई यंत्र पर कम प्रतिरोध डालती है, जिससे इस मृदा में जुताई कार्य करना आसान होता है। इस मृदा में जल प्रवेश व जल निकास आसानी से होता है और इसकी जल धारण क्षमता कम होती है। हल्की बलुई मृदा पौधों की वृद्धि व विकास के लिए अच्छी नहीं होती है। पौधों की वृद्धि व विकास के लिए दोमट मृदा (Lomy Soil) अच्छी होती है। दोमट मृदा में बालू, सिल्ट व क्ले का अनुपात 30-40, 30-40, 40-20 होता है।

➢ **मृदा कणाकार का महत्व**

मृदा कणाकार मृदा की उर्वरा शक्ति को स्थिर रखता है और फसलों को पोषण देने में सहयोग करता है। जिस मृदा के कण बड़े-बड़े होते है, वह कृषि कार्य के लिए उपयुक्त नहीं होती है। मृदा कणाकार का उचित होना विभिन्न कारकों, जैसे - भूमि में नमी, उचित वायु संचार, उचित मृदा ताप तथा कार्बनिक पदार्थों की उचित मात्रा आदि पर निर्भर करता है। खराब कणाकार होने पर मृदा सूर्य की गर्मी को भली-भाँति शोषित नहीं कर पाती, किन्तु उचित कणाकार की मृदा गर्मी की पर्याप्त मात्रा को प्राप्त करती है, जिससे मृदा का ताप उचित बना रहता है, जो पादप वृद्धि के लिए आवश्यक है। मृदा कणाकार उत्तम होने पर उनमें रन्ध्रों की संख्या अधिक होती है, जिससे मृदा में नमी व वायु संचार भी उचित मात्रा में बना रहता है।

• **मृदा रंग (Soil Colour)**

मृदा का रंग खनिज या कार्बनिक पदार्थ या दोनों की उपस्थिति के कारण होता है। मृदा रंग अप्रत्यक्ष रूप से मृदा ताप एवं नमी को प्रभावित करके पौधों की वृद्धि को प्रभावित करता है। कोई मृदा किन जलवायु सम्बन्धी दशाओं में विकसित हुई है, मृदा रंग इसका एक सूचक होता है। मृदा की उत्पादक क्षमता भी मृदा रंग से ज्ञात की जाती है। ये रंग सफेद, लाल, बादामी, भूरा, पीला और काला है। कभी-कभी नीले तथा हरे रंग के हल्के रंग (Tinges) भी मृदाओं में पाए जाते हैं। मृदा के रंग शुद्ध नहीं होते, बल्कि वे मिश्रित होते हैं, जैसे - भूरा, बादामी तथा रस्ट (Pastches)। शुद्ध नीला तथा हरा रंग मृदाओं में कभी नहीं मिलते हैं। कभी-कभी दो या तीन रंग टुकड़ों में पाए जाते हैं। मृदा का रंग मुख्यत: 2 पदार्थों की उपस्थिति के कारण होता है -

1) **ह्यूमस की मात्रा** - इसका रंग गहरा बादामी या काला होता है। यह मृदा कणों के पृष्ठों के ऊपर बहुत महीन अवस्था में रहता है। जब ह्यूमस की अत्यधिक मात्रा होती है, तो ये खनिज पदार्थ के रंग को प्रदर्शित नहीं होने देता और मृदा का रंग प्राय: काला दिखाई देता है। यह मृदा को प्राय: भूरा, गहरा भूरा या गहरा बादामी रंग देता है। उचित जल निकास न होने पर मृदा की ऊपरी सतह में ह्यूमस एकत्रित हो जाने से मृदा का रंग गहरा हो जाता है।

2) **आयरन के यौगिक की रासायनिक प्रकृति** - आयरन रंग पैदा करने वाला एक मुख्य पदार्थ है। यह खनिज कणों की सतहों पर धब्बों के रूप में दिखाई पड़ता है। खनिज मृदाओं में इसकी मात्रा लगभग 5 प्रतिशत या इससे अधिक होती है। ऑक्साइड या हाइड्राक्साइड के रूप में आयरन क्ले अंश का एक भाग होता है, जो खनिज कणों की सतहों पर आवरण के रूप मे मिलता है। आयरन की उपस्थिति में शुष्क क्षेत्रों की मृदा का रंग लाल होता है, लेकिन नम क्षेत्रों में मृदा का रंग आयरन के जलयोजित ऑक्साइडों के कारण लाल से पीला तक होता है।

➢ **मृदा रंग का महत्व**

गहरे रंग की मृदाएं अधिक उपजाऊ होती है, क्योंकि इनमें कार्बनिक पदार्थ की मात्रा अधिक होती है। हल्के रंग वाली मृदाओं में बालू या सिल्ट जिनका पोषण मान कम या नहीं होता है, की मात्रा अधिक होती है। नई मृदाओं में मृदा रंग पैतृक पदार्थ का सूचक होता है तथा परिपक्व मृदाओं में, मृदाएं जिस जलवायु में विकसित होती हैं, का सूचक है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

- **मृदा वायु (Soil Air)**

सभी जीवित पदार्थों के श्वसन के लिए ऑक्सीजन नितांत आवश्यक है। पौधों की जड़े मृदा के अन्दर होती हैं और शेष भाग जैसे तने, पत्तियां बाहर वायुमण्डल में रहती हैं। अत: पौधों के ऊपरी भाग को ऑक्सीजन वायुमण्डल से, जबकि पौधों की जड़ों को ऑक्सीजन की प्राप्ति मृदा वायु से होती है। ऑक्सीजन के अतिरिक्त वायुमण्डल का दूसरा अवयव CO_2 है, जो पौधों को प्रकाश संश्लेषण की क्रिया के लिए आवश्यक है। नाइट्रोजन स्थिरांक बैक्टीरिया वायुमण्डल से नाइट्रोजन स्थिर करके उच्च पौधों को देते हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वायुमण्डल के मुख्य अवयव ऑक्सीजन, नाइट्रोजन तथा CO_2 किसी न किसी रूप में पौधों के लिए आवश्यक हैं, जिन्हें पौधे वायुमण्डल तथा मृदा वायु से प्राप्त करते हैं। कुछ स्थानों में वायुमण्डल में SO_2 गैस भी पर्याप्त मात्रा में होती है, जिसके पौधों पर उपयोगी तथा हानिकारक प्रभाव देखने में आते हैं।

- **सरंध्रता (Porosity)**

मृदा आयतन के भीतर ठोस पदार्थों रहित जो रिक्त स्थान होता है, उसे मृदा रंध्र कहते हैं तथा मृदा के कुल आयतन का वह प्रतिशत भाग, जो रिक्त होता है, उसे मृदा सरंध्रता कहते हैं। शुष्क मृदा में यह रंध्राकाश हवा से, नम मृदा में वायु एवं जल से, परन्तु जल संतृप्त मृदा में ये जल से भरे रहते हैं। विशेष अवस्थाओं के अतिरिक्त अन्य दशाओं में हवा तथा पानी से भरे हुए आयतन तक एक-दूसरे के पूरक होते हैं। रंध्राकाश में हवा अधिक होने पर पानी कम और जल होने पर हवा का आयतन कम रहता है। मृदा आयतन में लगभग 30 से 60 प्रतिशत रन्ध्राकाश होता है।

- **मृदा वायु की क्षमता**

वायु, जल तथा रन्ध्राकाशों के पारस्परिक सम्बन्ध से यह पता लगता है कि मृदा में वायु की मात्रा गहराई के बढ़ने के साथ-साथ कम होती जाती है। निम्न संस्तरों में जल की मात्रा अधिक तथा अकेशिका रन्ध्राकाश की संख्या कम होती है। जल पटल (Water Table) पर मृदा वायु की मात्रा शून्य होती है। मृदा की ऊपरी सतह में मृदा वायु अधिक होती है। हल्की तथा भुरभुरी मृदा में वायु की क्षमता अपेक्षाकृत अधिक होती है। जुताई करने से, बालू अथवा कार्बनिक पदार्थ के मिलाने से मृदा ढीली हो जाती है, जिससे इसमें वायु की मात्रा अधिक बढ़ जाती है। कृत्रिम नालियों से, मृदा के सिकुड़ने से बनने वाली दरारें, जड़ों के फैलने से तथा केंचुओं और अन्य जीवों के द्वारा बिलों के बनाने तथा मिट्टी के पलटने से वायु का संचार बढ़ जाता है, क्योंकि जल मृदा में से रिसकर नीचे की ओर चला जाता है। मृदा के सूखने पर इसमें वायु की मात्रा बढ़ जाती है, बलुई तथा लोमी मृदाओं में जितनी मात्रा में जल की हानि होती है, उतनी मात्रा में वायु उसका स्थान ग्रहण करती है, किन्तु चिकनी मिट्टी सूखने पर सिकूड़ने के कारण जल की हानि होने से इसमें कम मात्रा में वायु प्रवेश करती है। इस प्रकार अवमृदा के वातन में सुधार होकर मृदा पोली हो जाती है।

- **मृदा ताप**

पादप वृद्धि तथा सूक्ष्म जीवों की सक्रियता को प्रभावित करने वाले कारकों में से ताप एक मुख्य कारक है। बीजों का खेत में अंकुरित होना, पत्तों का बढ़ना, फल एवं फुल लगना आदि मृदा ताप पर निर्भर होते हैं। कार्बनिक पदार्थ के विच्छेदन तथा कार्बनिक नाइट्रोजन की खनिजन की दर ताप में वृद्धि होने से अधिक होती है। उच्च ताप की मृदाओं में निम्न ताप की मृदा की अपेक्षा कार्बनिक पदार्थ की मात्रा कम होती है। अन्य सूक्ष्म जैविक प्रक्रमों की गति भी ताप पर निर्भर होती है। पौधे एवं जन्तुओं के जीवन प्रक्रमें 40° से 120°F ताप के मध्य ही सम्भव होती है। इस परिसर से अधिक या कम ताप पर सभी जीवन क्रियाएं बन्द हो जाती हैं। 80-100°F ताप सभी जीवन प्रक्रमों के लिए उपयुक्त होता है। मृदा ताप को विभिन्न कारक, जैसे - विशिष्ट ऊष्मा, मृदा नमी, फसलें, मृदा रंग, भूमि का ढाल, कार्बनिक पदार्थ का विच्छेदन तथा जुताई आदि कारक प्रभावित करते हैं।

- **मृदा संरचना**

मृदा प्राथमिक कण (बालू, सिल्ट तथा क्ले) एवं द्वितीयक कण (जो प्राथमिक कणों के पारस्परिक सहयोग से बनते हैं) से मिलकर बनी होती है। मृदा में ये कण कई प्रकार से व्यवस्थित होते हैं। मृदा के इन कणों की इस व्यवस्था एवं उनके समूच्चयों (Aggregates) को मृदा संरचना कहते हैं। मृदा समूच्च प्राकृतिक रूप से पाए जाने वाला गुच्छ (Cluster) या मृदा कणों के समूह होते हैं। प्राकृतिक पुंज पैड्स (Peds) कहलाते हैं, जबकि कृत्रिम रूप से बना पुंज ढेला (Cloed) कहलाता है। अन्त: स्त्रावी जल में विलेय लवणों के अवेक्षेपण से कंकड बनते हैं।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

मृदा संरचना को कई प्रकार से वर्गीकृत किया जाता है। वर्गीकरण की सभी प्रणालियों में निम्नलिखित 4 मूल प्रकारे मानी जाती हैं –

1) **प्लेटी संरचना** – इस संरचना में कण पुंजों का क्षैतिज अक्ष उर्ध्वाधर अक्ष की अपेक्षा अधिक विकसित होता है और ये चपटे, दबे हुए या लेंस के समान दिखाई देता है और रचनात्मक इकाइयां मोटी हैं। ये संरचना नम प्रदेशों की मृदाओं के अ–संस्तर में पाई जाती है तथा कण पुंजों का आकार 1–10 मिमी तक होता है।

2) **प्रिज्मीय संरचना** – इस प्रकार की संरचना में कण पुंजों का उर्ध्वाधर अक्ष क्षैतिज अक्ष की अपेक्षा बड़ा होता है। उर्ध्वाधर भूजा तेज, चपटे किनारों एवं चमकदार धरातलों वाली होती है। जब इस प्रकार पैड या कण पुंजों का शीर्ष तथा किनारे गोलाकार होते हैं, तो संरचना स्तम्भाकार होती है। जब सिरा समतल या सपाट होता है, तो वह प्रिज्मीय संरचना कहलाती है। इसमें कण समूहों का आकार 10–100 मिमी तक होता है। यह शुष्क तथा अर्द्धशुष्क मृदाओं के ब–संस्तर में मिलती है।

3) **ब्लॉकीय संरचना** – इसे घनाकार या नटनूमा संरचना भी कहते हैं। इनमें 3 विमाएं लगभग बराबर होती हैं और पैड घन की तरह समतल या गोलाकार सतहों के होते हैं। जब पैड्स के फलक चपटे तथा किनारे तेज व कोणीय होते हैं। ऐसी संरचना ब्लॉकी कहलती है, किन्तु जब फलक तथा किनारे गोलाकार होते हैं, तो संरचना नटनूमा कहलाती है। ब्लॉकी संरचना ब–संस्तरों में पाई जाती है। इसमें पैड्स का आकार 5–50 मिमी होता है।

4) **गोलाकार संरचना** – इसमें पैड्स का आकार गोलाकार होता है। पैड्स के फलक वक्रित तथा अनियमित होते हैं तथा सभी अक्षों की लम्बाई लगभग समान होती है और और ये सामान्य तौर पर आकार में छोटी होती है। इस वर्ग में पुंज प्राय: दानेदार कहे जाते हैं, जो कि अपेक्षाकृत कम रन्ध्रों वाले होते हैं। जब कणिकाएं बहुत अधिक सरंध्री होती हैं, तो यह क्रम्बी सरचना होती है। यह सरंचना मृदा की ऊपरी सतह में पाई जाती हैं। इसमें पैड्स का आकार 1–10 मिमी होता है।

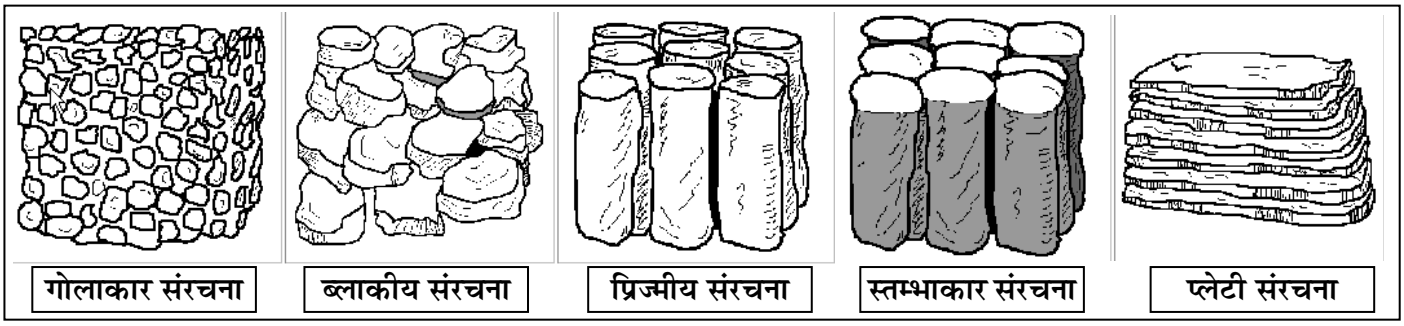

❐ मृदा के रासायनिक गुण

मृदा के रासायनिक गुण निम्नलिखित प्रकार के होते हैं –

◆ रासायनिक अभिक्रिया एवं मृदा pH

मृदा अभिक्रिया का अभिप्राय मृदा विलयन की अम्लता, क्षारता एवं उदासीनता से होता है। यदि मृदा कोलाइड पर हाइड्रोजन (H^+) आयन्स का सांद्रण हाइड्रोक्सिल (OH^-) आयन्स के सान्द्रण की अपेक्षा अधिक है, तो मृदा अम्लीय होती है। इसी प्रकार OH^- आयन्स का सांद्रण H^+ आयन्स के सान्द्रण से अधिक होने पर मृदा क्षारीय होती है तथा H^+ आयन्स और OH^- आयन्स समान संख्या में होने पर मृदा अभिक्रिया उदासीन होती है।

मृदा अभिक्रिया को एक स्केल द्वारा बताते हैं, जिसे pH स्केल कहते हैं। मृदाओं का pH 4 से 10 तक होता है। आर्द्र क्षेत्रों की मृदाएं प्राय: अम्लीय होता है तथा उनका pH 7 से कम होता है। भस्म संतृप्त मृदाओं का pH 7 से अधिक होता है। कैल्शियम की उपस्थिति में pH 7.5, लेकिन कैल्शियम कार्बोनेट ($CaCO_3$) की उपस्थिति में pH 8.5 तक हो सकता है।

➢ pH उपयोगिता

खनिज मृदा में बैक्टिरियां उदासीन और अल्पक्षारीय दशाओं में सक्रिय होते हैं। pH 5.5 से कम होने पर इन दोनों की संख्या एवं सक्रियता कम हो जाती है। इस pH मान पर या इससे कम pH पर फंजाई की संख्या में वृद्धि अधिक तीव्रता से होती है और इनके द्वारा कार्बनिक पदार्थों का ऑक्सीकरण इसी pH पर होता है। खनिज मृदाओं में नाइट्रीकरण तथा नाइट्रोजन स्थरीकरण 5.5 से ऊपर ही होता है। सभी सूक्ष्म जीवों के लिए उपयुक्त pH 6–7 होता है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

- **कार्बनिक पदार्थ**

जन्तु एवं वनस्पति पदार्थों के जो अवशेष मृदा में मिलाए जाते हैं या मृदा में स्वयं उपस्थित होते हैं, मृदा कार्बनिक पदार्थ कहलाते हैं। कार्बनिक पदार्थ शब्द में ह्यूमस, पौधों की जड़े तथा अन्य भाग आते हैं। इसके साथ-साथ सूक्ष्म जीव, कीड़े, मकोड़े, अन्य जीव-जन्तुओं मृत शरीर तथा मृदा में मिलाए जाने वाले खाद भी कार्बनिक पदार्थ शब्द में आते हैं। मृदा कार्बनिक पदार्थ के मुख्यत: 2 स्रोत हैं - पादप स्रोत एवं जन्तु स्रोत। पादप स्रोत में पैड़-पौधों एवं फसलों के अवशेष, हरी खाद की फसलें, गोबर की खाद, कम्पोस्ट, बिछाली एवं पशुओं का बिछावन आते हैं, जबकि जन्तु स्रोत में कीड़े, मकोड़े तथा जन्तु, जो मृदा में रहते हैं, मरने के बाद उनके अवशेष तथा शुष्क खून, हड्डियों का चूरा आदि आते हैं।

- **ह्यूमस**

मृदा कार्बनिक पदार्थ का एक अंश है, जो उसके सड़ने व गलने पर उसमें रह जाता है। कोई भी कार्बनिक पदार्थ, जो मृदा में मिलाया जाता है या रह जाता है, मृदा कार्बनिक पदार्थ कहलाता है। यह गहरे रंग का एक बहुत जटिल पदार्थ होता है, जो प्रकृति में अम्लीय व जल में अविलय होता है। ह्यूमस में कार्बन 50-60 प्रतिशत, हाइड्रोजन 4-5 प्रतिशत, ऑक्सीजन 35-40 प्रतिशत, नाइट्रोजन 3-6 प्रतिशत तथा खनिज पदार्थ की विभिन्न मात्राएं होती हैं। ह्यूमस मृदा में आवश्यक पौषक तत्वों की प्राप्यता को बढ़ाते हैं। साथ ही मिट्टी में कुछ ऐसे पदार्थों को उदासीन करता है, जो पौधों पर विषैला प्रभाव डालते हैं। कार्बनिक पदार्थों के विघटन को प्रभावित करने वाले मुख्य कारक आर्द्रता, ताप, C:N अनुपात आदि होते हैं।

- **धनायन विनिमय क्षमता (Cation Exchange Capacity - CEC)**

धनायन विनिमय पूर्णरूप से एक पृष्ठ क्रिया है, जो मृदा क्ले क्रिस्टल तथा ह्यूमस कणों के पृष्ठों या किसी अन्य पृष्ठ पर शीघ्र होती है। इस क्रिया में मृदा कोलाइडी केन्द्रक धनायनों का अधिशोषण या स्थिरीकरण करके इनके बदले में साथ ही साथ एक या अधिक आयन मुक्त करता है। सम्पूर्ण कृषि क्षेत्र में प्रकाश संश्लेषण के पश्चात् CEC सबसे महत्वपूर्ण होती है। वैज्ञानिकों के अनुसार मृदा उर्वरता का एकमात्र सर्वोत्तम सूचक मृदा की धनायम विनिमय क्षमता होती है।

किसी मृदा के विनिमय भस्मों के प्रकार एवं मात्रा का मृदा के सामान्य गुणों पर सीधा प्रभाव पड़ता है, जैसे - उच्च कैल्शियम बेस संतृप्त मृदा सबसे संतोषजनक भौतिक और पौषक स्थिति में होती है, क्योंकि ये मृदाएं सरन्ध्री और दानेदार संरचना की होती है। इस कारण इनमें वातन व जल निकास अच्छा होता है। बेस असंतृप्त मृदाओं में विनिमय हाइड्रोजन तथा एल्यूमिनियम के कारण अधिक अम्लता होती है। हालांकि ये मृदा भूरभूरी होती है, लेकिन इनमें पौधों की वृद्धि अच्छी नहीं होती है। सभी सामान्य उपजाऊ मृदा में कुल विनिमय भस्मों ($Ca^{+}Mg^{+}K^{+}Na^{+}$) की मात्रा CEC का लगभग 80-90% तक होती है तथा विनिमय हाइड्रोजन प्राय: 20% से कम होती है। इन मृदाओं में कैल्शिमय मुख्य विनिमय भस्म होता है, जिसकी मात्रा कुल विनिमय धनायनों की 60-80% होती है। कैल्शियम की मात्रा अधिक होने पर कैल्शियम क्ले बनती है, जिनकी अभिक्रिया उदासीन तथा pH मान 6.5-7.5 तक होता है।

- **कार्बन नाइट्रोजन अनुपात**

मृदा में प्राप्त कार्बन तथा नाइट्रोजन की मात्राओं के अनुपात को कार्बन नाइट्रोजन अनुपात (C:N) कहते हैं। मृदा कार्बनिक पदार्थ तथा मृदा में उपस्थित नाइट्रोजन की मात्रा में एक घनिष्ठ संबंध होता है। कार्बन ऊर्जा प्रदान करने का कार्य करता है तथा नाइट्रोजन एक मुख्य पादप पोषक है। मृदा में C:N लगभग स्थिर रहता है, इसलिए मृदा में C, अर्थात् - कार्बनिक पदार्थों की उपस्थिति मुख्यरूप से मृदा नाइट्रोजन पर निर्भर करती है। जब कार्बनिक पदार्थों का विघटन प्रारंभ होता है, तो C:N अनुपात तेजी से घटता है, क्योंकि कार्बन CO_2 के रूप में निकल जाता है और N संरक्षित हो जाता है। पौधे की उम्र बढ़ने पर C/N अनुपात बढ़ता है, इसलिए विघटन की प्रक्रिया धीमे होती है। कृषि योग्य मृदा में यह परिसर 8:1 से 15:1 तक होता है। औसत रूप में C:N 10:1 या 12:1 पाया जाता है। यह अनुपात अधिक होने पर मृदा जीव तथा उच्च पौधों के मध्य नाइट्रोजन के लिए स्पर्धा होती है। इसका लाभ यह होता है कि जब सामान्य हित वाले पर पोषित बैक्टिरिया की संख्या कम हो जाती है, तो अमोनियम आयन्स नाइट्रीकरण की क्रिया द्वरा नाइट्रेट में बदल जाते हैं, जो जल निकास द्वारा नष्ट हो जाते हैं।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

❒ मृदा के जैविक गुण

मृदा एक मृतक पदार्थ नहीं है, इसमें भी जीवन है। मृदा में मृदा-जीव (जन्तु + पादप) बहुत अधिक संख्या में रहते है। मृदा की गुणता, स्थिरता, उर्वरता साथ ही मृदा में कार्बनिक पदार्थों के अपघटन संबधी समस्त प्रक्रिया इन मृदा जीवों द्वारा ही संचालित होती है। मृदा के जैविक गुण इन मृदा जीवों के गुणों एवं इनके क्रियाकलापों पर ही आधारित है। इन जीवों में कुछ तो स्पष्ट रूप से दिखाई देते है, परन्तु मृदा में इनकी संख्या सीमित होती है। अधिकांश जीव इतने सूक्ष्म होते हैं कि वे केवल सूक्ष्मदर्शी से ही देखे जा सकते है, इन्हें सूक्ष्म जीव कहते हैं। ये मृदा में अत्यधिक संख्या में पाए जाते है।

❒ मृदा के जैविक गुणों का वर्गीकरण

जीव रासायनिक क्रियाओं के आधार पर मृदा जीवों को 2 वर्गों में बांटा गया है -

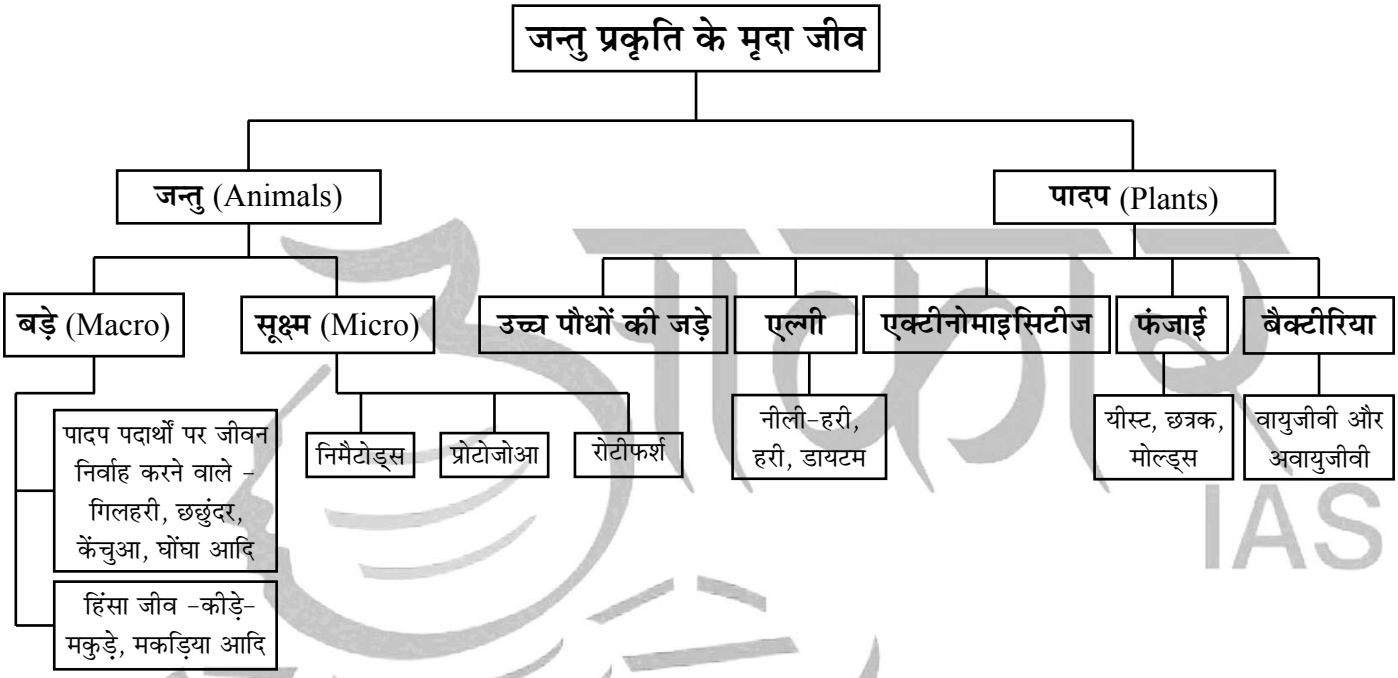

◆ जन्तु प्रकृति के मृदा जीव

ये जन्तु अधिकतर वनस्पति पदार्थ अथवा अन्य छोटे जन्तुओं पर जीवनयापन करते है। ये मृदा में बिल बनाकर रहते है, जैसे- केंचुआ, गिलहरी, खरगोश, छछुन्दर आदि। ये जन्तु यद्यपि कृषि के लिए हानिकारक होते हैं, किंतु ये अपना निवास स्थान बनाने के लिए मृदा या चट्टानों अपना बिल खोदते है और इस क्रिया में मिट्टी की पर्याप्त मात्रा को काटकर मिलाते तथा स्थानांतरित करते है, जिससे मृदा में प्रचुर्ण (Pulverization) सुचारू रूप से होता है। इनके बिल एवं दरारें वातन का कार्य करती है, जिससे मृदा का जल-निकास सुधार जाता है। साथ ही कार्बनिक पदार्थों को मृदा में भली-भाँति मिला देते है। **बड़े आकार के जीव** - बड़े आकार के जीवों में केंचुआ सबसे महत्वपूर्ण है।

➢ केंचुआ (Earth Worm)

मृदा में पाए जाने वाले बड़े जीवों में केंचुए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। भार की दृष्टि से मृदा जीवों में केंचुए की प्रतिशतता 50-75 होती है। केंचुए अन्य मृदा जीवों की अपेक्षा मोटे कार्बनिक पदार्थों के विच्छेदन में अधिक सक्रिय होते है। ये मृदा में पादप अवशेषों को भली-भांति मिला देते है, जिससे उनका विच्छेदन शीघ्र प्रारंभ हो जाता है। ये मृदा में इधर-उधर घुमकर अनेकों दरारें बनाते है, जिनके कारण वायु संचार सुचारू रूप से होने लगता है और जल-निकास में सुविधा मिलती है। साथ ही मृदा उर्वरता स्थिर रखने में केंचुए मुख्य भूमिका निभाते है। ये नम मृदाओं में रहना पसंद करते है। कार्बनिक पदार्थ केंचुओं का मुख्य भोजन होने के कारण इनकी संख्या कार्बनिक पदार्थों में अधिक होती है। गोबर की खाद, कम्पोस्ट या कार्बनिक पदार्थ मृदा में मिलाने से केंचुओं की संख्या बढ़ जाती है तथा मृदा pH 4.5 से कम होने पर इनकी संख्या कम हो जाती है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

➢ सूक्ष्म जीव (Micro Animals)

सूक्ष्म जन्तुओं के 3 प्रमुख समुह होते है, जो निम्नलिखित है –

1) **निमैटोड्स** – ये सूक्ष्म जन्तु सभी प्रकार की मृदाओं में अत्यधिक संख्याओं में पाए जाते है। इनके शरीर गोल और तुर्क आकार (Round and Spindle shaped) के होते है और प्राय: इनके पश्च भाग नुकीला होता है। ये मृदा के अंदर पौधों की जड़ों में अपना घर बनाकर परजीवी के रूप में रहते है। चूंकि ये नुकीले होते है इसलिए सरलता से पौधों के तंतुओं में प्रवेश कर सकते है और अधिकतर अपना जीवन वहीं व्यतीत करते है। ये कार्बनिक पदार्थों और खनिज पदार्थों का घनिष्ठ मिश्रण बनाते हैं, साथ ही कार्बनिक पदार्थों का विच्छेदन भी करते है। इनकी क्रियाओं से मृदा वातन की दशाओं में भी सुधार होता है।

2) **प्रोटोजोआ** – ये जन्तु वर्ग के सबसे सरल जन्तु माने जाते है। ये सरलतम एक कोशिकीय सूक्ष्म जन्तु होते है। ये बैक्टीरिया की अपेक्षा बड़े होते है । प्रोटोजोआ का मुख्य भोजन बैक्टीरिया होता है। बैक्टीरिया जीवन पर प्रोटोजोआ का हानिकारक प्रभाव पड़ता है। मृदा में प्रोटोजोआ की संख्या परिवर्तनीय होती है। इनकी संख्या पर सबसे अधिक प्रभाव भोजन प्रदाय तथा मृदा वातन का पड़ता है। अत: बहुत से प्रोटोजोआ धरातलीय स्तरों तक ही सीमित होते है।

3) **रोटीफर्श** – इन वर्ग के सुक्ष्म जन्तु अधिक नम तथा दलदली मृदाओं में अधिक संख्या में पाए जाते है। इनकी वृद्धि भी नम क्षेत्रों में अधिक होती है। ये अपने रोम द्वारा जन्तुओं से भोजन लेते है तथा पूर्ण रूप से पैरासाइट्स होते है। ये पीट बॉग्स मृदाओं में अधिक सक्रिय होते है।

• वनस्पति प्रकृति के मृदा जीव

ये मृदा में कार्बनिक पदार्थों का विच्छेदन तथा ह्यूमस का निर्माण करते है और पौधों के लिए पोषक तत्वों की प्राप्यता बढ़ाते है। इस वर्ग के मुख्य जीव निम्न हैं–

➢ उच्च पौधों की जड़े

कार्बनिक पदार्थों के स्तरों के रूप में उच्च पौधों की जड़ो का काफी महत्त्व है, क्योंकि अन्य सभी जीवों की अपेक्षा ये अधिक मात्रा में मृतक मूल जन्तु प्रदान करती है। वास्तव में मृदा जीवन को 2 भागों में विभाजित किया जा सकता है –

1) वे जो कार्बनिक अवशेष प्रदान करते है, जैसे – जड़े।

2) वे जो इस कार्बनिक अवशेष के विच्छेदन में व्यस्त रहते है, जैसे – केंचुए, बैक्टीरिया आदि।

उच्च पौधों की जड़े मृदा जीवों को उनका भोजन प्रदान करती है। जीवित पौधों की जड़े मृदा विलयन से विलेय पोषकों को ग्रहण कर पोषक तत्वों की उपलब्धता कराती है। जड़े निचले संस्तरों में प्रवेश कर जाती है और वहां कार्बनिक पदार्थ इकट्ठा कर देती है। इनके सड़ने–गलने से मृदा में नालियां बन जाती है,जिससे मृदा वातन व जल–निकास अच्छा होता है।

➢ मृदा एल्गी

मृदा एल्गी सूक्ष्मदर्शी क्लोरोफिल युक्त जीव होते है, जो कई प्रकार के होते है, जैसे – नीली–हरी, हरी, पीली एल्गी आदि। एल्गी का मृदा में वितरण ऊपरी सतह पर ही होता है। अधिक उर्वर मृदाओं में ये उत्तम विकसित होती है। ये स्वपोषित जीव है तथा सरल अकार्बनिक यौगिकों का संश्लेषण स्वत: ही कर लेती है। ये वायु की CO_2 का उपयोग करके कार्बन एवं सूर्य प्रकाश से ऊर्जा प्राप्त कर लेते है। मृदा में इनकी संख्या सूर्य प्रकाश, नमी तथा pH आदि पर निर्भर करती है। अधिक pH स्तर पर ये अधिक सक्रिय होती है तथा pH मान 5 अथवा इससे कम होने पर नष्ट हो जाती है साथ ही सूर्य के तीव्र प्रकाश व नमी की अनुपस्थिति में भी ये निष्क्रिय हो जाती है। ये मृदा सतह पर मृदा कणों को बांधकर मृदा कटाव को कम करती है तथा दलदली मृदाओं में वातन बढ़ाने के साथ–साथ प्रकाश संश्लेषण की क्रिया में O_2 मुक्त करती है।

➢ मृदा फंजाई

फंजाई परजीवी तथा मृत जीवी होती है, जिसमें क्लोरोफिल नहीं होता है। यह इतनी सुक्ष्म होती है कि इन्हें नग्न आंखों से नहीं देखा जा सकता। फिर भी इनमें से कुछ सड़े पदार्थों की तली पर उंगी हुई दिखाई दे सकती है। मृत जीवी के रूप में ये कार्बनिक पदार्थों के अपघटन से अपनी ऊर्जा प्राप्त करती है तथा परजीवी के रूप में से पौधे तथा जन्तुओं की जीवित कोशिकाओं को हानि पहुंचाती है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

ये मृदा में अत्यधिक संख्या में मिलती है, लेकिन बैक्टीरिया से कम होती है। ये अम्लीय मृदाओं मे अधिक पाई जाती है। इनके लिए अनुकूल pH मान 4.5 से 5.5 होता है। कार्बनिक पदार्थ अधिक होने पर इनकी संख्या मृदा में बढ़ जाती है। ये मुख्यत: 3 प्रकार की होती है - यीस्ट, मोल्ड्स, छत्रक।

➢ **एक्टीनोमाइसिटीज**

एक्टीनोमाइसिटीज फंजाई से आकार में छोटे किन्तु बैक्टीरिया से बड़े होते है और रूप तथा आकार में फंजाई से कुछ मिलते-जुलते है। ये एक कोशिकीय होते है। इनका रूप धागे के समान होता है। ये मृदा कम्पोस्ट तथा झीलों की सतह पर मिलते है। जिन मृदा में कार्बनिक पदार्थ प्रचुर मात्रा में होता है उनमें एक्टीनोमाइसिटीज की संख्या अधिक होती है। इनकी सक्रियता 6.5 - 8 pH मान पर अधिकतम होती है व pH 5 से कम हो जाने पर ये निष्क्रिय हो जाते है। मृदा के कार्बनिक पदार्थों का विच्छेदन कर पोषक तत्वों को मुक्त करने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते है।

➢ **बैक्टीरिया**

मृदा में बैक्टीरिया सबसे अधिक संख्या में पाए जाते है। ये एक कोशिकीय अतिसुक्ष्म जीव होते है। इनमें क्लोरोफिल नहीं पाया जाता है। बैक्टीरिया की सक्रियता एवं संख्या नम मृदाओं में अधिक होती है, इसके लिए उपर्युक्त नमी, 50 से 70 प्रतिशत मृदा जल धारण क्षमता होती है। अधिक नम मृदाओं में वायु जीवी बैक्टीरिया की संख्या कम होती है। खनिज मृदा में बैक्टीरिया की संख्या, कार्बनिक पदार्थ की मात्रा अधिक होने पर अधिक होती है। अधिक अम्लीय तथा क्षारीय मृदाओं में बैक्टीरिया की संख्या कम होती है, इसके लिए उपयुक्त माध्यम उदासीन मृदाएं होती हैं। जुताई-गुडाई करने से मृदा की संरचना एवं संरन्ध्रता, वायु संचार, नमी आदि पर उपयुक्त प्रभाव पड़ता है, जो कि बैक्टीरिया की संख्या में वृद्धि करता है। इनकी संख्या बसंत ऋतु या पतझड़ में अधिक व गर्मीयों एवं सर्दियों में कम होती है।

❒ रासायनिक गुणों के आधार पर मृदा का वर्गीकरण

रासायनिक गुणों के आधार पर मृदा को 4 प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता हैं -

1) अम्लीय मृदा। **2)** क्षारीय मृदा। **3)** लवणीय मृदा। **4)** उदासीन मृदा।

◆ अम्लीय मृदा

अम्लीय मृदा प्राय: 40 इंच से अधिक वर्षा वाले दलदली एवं नम जलवायु वाले क्षेत्रों में पाई जाती है। इन क्षेत्रों में अधिक वर्षा के कारण मृदा कणों पर अधिशोषित कैल्शियम आयन (Ca^{2+}) एवं मैग्निशियम आयन (Mg^{2+}) जल के साथ बहकर नीचे चले जाते है और इनका स्थान विनिमयशील हाइड्रोजन आयन (H^+) द्वारा ले लिया जाता है। इस प्रकार H^+ आयन का सान्द्रण बढ़ने के कारण ही अम्लीय मृदाओं का निर्माण होता है। इन मृदाओं का pH मान 7 से कम होता है।

भारत में अम्लीय मृदाओं का क्षेत्रफल लगभग 120 लाख हेक्टेयर है। इन मृदाओं की भौतिक दशा उसर मृदाओं से अच्छी होती है। फसल उत्पादन की दृष्टि से अम्लीय मृदाएं समस्या ग्रस्त है।

➢ **अम्लीय मृदाओं का निर्माण** - अम्लीय मृदा निर्माण में लेटेराइटीकरण, पॉडजॉलीकरण, निक्षालन तथा आंशिक जैव विघटन एवं उसका संचयन आदि महत्वपूर्ण क्रियाएं भाग लेती हैं, साथ ही किसी क्षेत्र विशेष में अधिक वर्षा या लगातार वर्षा होने के कारण तथा अम्लीय उर्वरकों का लगातार प्रयोग करने से भी मृदा में अम्लीयता में वृद्धि होती है। उपरोक्त क्रियाओं में से लेटेराइटीकरण व पॉडजॉलीकरण अम्लीय मृदा निर्माण में मुख्य भूमिका निभाती है।

➢ **फसलों पर अम्लीयता का प्रभाव** - अम्लीयता के कारण P_2O_5 अप्राप्य हो जाता हैं तथा कैल्शियम व पोटेशियम की कमी हो जाती है। साथ ही मृदा में एल्यूमिनियम व आयरन की घुलनशीलता बढ़ जाती है, जिससे पौधों तथा अन्य जीवों पर विषैला प्रभाव पड़ता है।

➢ **अम्लीय मृदाओं में सुधार** - अम्लीय मृदाओं में सुधार करने के लिए बिना बुझा चूना (कैल्शियम ऑक्साइड) व कैल्शियम बाइकार्बोनेट का उपयोग किया जाता है। साथ ही अम्लीय मृदाओं में सुधार के लिए क्षारीय प्रकृति के उर्वरकों का प्रयोग किया जाना चाहिए व फसलों में उच्च अम्ल प्रतिरोधी फसलें, जैसे - आलू, धान, जई, शकरकंद आदि लगाना चाहिए।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

- **लवणीय मृदा**

ऐसी मृदा के जड़ क्षेत्र में घुलनशील लवणों की सान्द्रता हानिकारक स्तर से अधिक होती है। ये घुलनशील लवण Na, Ca, Mg के क्लोराइड व सल्फाइड होते है। इन मृदाओं का pH मान 7 से ज्यादा एवं 8.5 से कम होता है। लवणीय मृदा में मृदा स्तर की ऊपरी सतह पर सबसे ज्यादा लवण की मात्रा पाई जाती हैं तथा सूखे मौसम में मिट्टी की सतह पर उजली पपड़ी से नजर आती है। ऐसी मृदा का रंग उजला या हल्का घुसर होता है, इसलिए इसे श्वेत क्षारीय मृदा (White Alkali Soil) भी कहते है। इन मृदाओं का निर्माण साधारणत: 55 सेमी से कम वर्षा वाले शुष्क एवं अर्द्ध-शुष्क क्षेत्रों में होता है। इन मृदाओं में कार्बनिक पदार्थ की ह्यूमस की उपस्थिति हमेशा बनी रहती है। इन मृदाओं की भौतिक दशा अच्छी होती है, जिससे कुछ हद तक यांत्रिक विधि से इन्हें सुधारा जा सकता है।

- **क्षारीय मृदा**

क्षारीय मृदा निर्माण की प्रक्रिया में लवणों का जमा होना पहला चरण होता है। ऐसी मृदा का निर्माण 55 से 90 सेमी औसत वार्षिक वर्षा युक्त अपेक्षाकृत निम्न क्षेत्रों में होता है, जहां जल निकास की व्यवस्था अच्छी नहीं होती। इन मृदाओं में सोडियम आयनों के साथ कैल्शियम आयन भी विकसित हो जाता है। क्षारीय मृदा के विकास में स्पष्टत: 4 चरण होते हैं -

1) लवणीयकरण। **2)** क्षारीयकरण। **3)** आधिक्य लवणों का न्यूनीकरण। **4)** निम्नीकरण।

भारत के विभिन्न भागों में इन लवण प्रभावित मृदाओं को विभिन्न नामों से पुकारा जाता है। उसर एक अधिक प्रचलित नाम है, जो संस्कृत के 'Ustra' शब्द से बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ है - Sterile या बंजर। यह नाम (उसर) उत्तरी भारत में खासतौर से उत्तर प्रदेश में लवणीय और क्षारीय मृदाओं के लिए प्रयोग किया जाता है। इन मृदाओं को रेह भी कहते हैं। पंजाब में लवणीय मृदाओं को थर (Thur) तथा क्षारीय मृदाओं को राकर (Rakkar) या बारा और बारी (Bara and Bari) कहते है। क्षारीय एवं लवणीय दोनों मृदाओं के लिए कल्लर (Kallar) शब्द भी प्रयोग किया जाता है। बम्बई में इन्हें चोपन (Chopan) कहते हैं।

❐ लवणीय एवं क्षारीय मृदाओं का विकास (Development of Saline & Alkali)

इन मृदाओं का विकास संक्षिप्त में मैजिस्ताद ने (Magistad-1945) निम्नलिखित प्रकार से दिया है -

1) **लवणीयकरण (Salinization)** - यह मृदा की ऊपरी सतह पर लवणों के एकत्रित होने की एक क्रिया है। जिन भूमियों में, किन्हीं कारणों से जल-निकास उचित नहीं हो पाता, तो भूमियों की ऊपरी परतों से पानी वाष्पीकरण (Evaporation) की क्रिया से नष्ट होता रहता है और उनमें घुले हुए लवण ऊपरी सतह पर पपड़ी के रूप में (Precipitate form) एकत्रित हो जाते हैं। आरंभ में सोडियम के लवण इकट्ठे होते हैं, क्योंकि ये इस प्रकार की भूमियों में पाए जाने वाले लवणों जैसे - कैल्शियम सल्फेट व कैल्शियम कार्बोनेट की तुलना में अधिक घुलनशील होते हैं। इस प्रकार भूमि की निचली सतहों से ये लवण घोल के रूप में रन्ध्रकूप नलिकाओं (Capillary tubes) के सहारे ऊपरी सतह पर आते हैं और बाद में वाष्पीकरण के फलस्वरूप ऊपरी सतह पर ही छोड़ दिए जाते हैं।

2) **क्षारीयकरण (Alkalinization)** - जैसे-जैसे मृदा के अंदर लवण एकत्र होते हैं तो क्षार विनिमय (Base Exchange) की क्रिया के फलस्वरूप मृदा घोल से विभिन्न धनायनों (Cation), जैसे - कैल्शियम, मैग्निशियम की अपेक्षा सोडियम मृदा श्लेषाभ (Soil Colloids) पर अधिक मात्रा में चिपक (Absorb) जाते हैं। इस प्रकार मृदा श्लेषाभ पर विनिमय योग्य सोडियम (Exchangeable Sodium) का प्रतिशत बढ़ जाने के कारण मृदा में क्षार बढ़ जाता है। इस क्रिया को ही क्षारीयकरण (Alkalinization) कहते हैं।

❐ लवणीय एवं क्षारीय मृदाओं के कारण (Causes of Formation of Saline Alkali Soil)

प्राय: इस प्रकार की मृदाओं का निर्माण शुष्क, अर्द्ध-शुष्क क्षेत्रों या ऐसी भूमियों में जहां पर जल-निकास उचित न हो या भूमि की पारगम्यता बहुत ही कम हो पाया जाता है। इस प्रकार की मृदाओं के निर्माण के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं -

1) **पैत्रिक पदार्थ (Parent Materials)** - प्राय: चट्टानों का निर्माण विभिन्न खनिजों से होता है। यदि चट्टान के अंदर क्षार (Bases) अधिक है, जो चट्टानों के अपक्षय (Rock Weathering) के समय ये क्षार इनसे अलग होकर विभिन्न माध्यमों से पानी, हवा द्वारा नीचे की भूमियों की ऊपरी परतों पर तह के रूप में जमा हो जाते हैं और इस प्रकार इन मृदाओं का निर्माण करते हैं।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

2) **शुष्क जलवायु (Arid Climate)** - शुष्क क्षेत्रों में पानी की कमी के कारण लवण न तो पौधों के द्वारा चूषित किए जाते है न ही इनका उद्विलयन (Leaching) की क्रिया के फलस्वरूप ऊपरी सतह से निष्कासन हो पाता। बल्कि भूमि में जल केशिकाओं (Capillary Tubes) के सहारे भूमि की ऊपरी सतह की ओर चढ़ते हैं। चूंकि ऐसे क्षेत्रों में तापक्रम अधिक होता है व जलवायु भी शुष्क होती है। ऊपरी सतह का पानी भाप बनकर वायुमण्डल में उड़ जाता है व अपने अंदर घुले हुए लवणों को ऊपरी सतह पर ही छोड़ा जाता है और इस प्रकार ये लवण भूमि की ऊपरी सतह पर एकत्रित हो जाते हैं।

3) **भूमि की निचली तहों में सख्त तह का पाया जाना (Presence of Hard layer in Subsurface Soils)** - विशेष रूप से चिकनी मिट्टी में भूमि के अंदर की सतहों में यदि कोई कंकड़-पत्थर की सख्त तह है, तो वह जल में घुलनशील लवणों को नीचे की तहों में पहुंचाने में बाधक बन जाती है, अर्थात् - इनका उद्विलयन (Leaching) नहीं हो पाता और ये लवण ऊपरी तहों में ही एकत्रित हो जाते हैं।

4) **खेत की जुताई एक ही गहराई पर करते रहना (Plouging of the Field at the Same Depth)** - खेत की बार-बार एक ही गहराई पर जुताई करते रहने के कारण, उस गहराई पर सख्त तह बन जाती है, जो लवणों को नीचे की तहों में पहुंचने में बाधक हो जाती है, अर्थात् - निक्षालन (Eluviation) नहीं हो पाता।

❐ मृदा या वनस्पति में आवश्यक वनस्पतिक पोषक और विभिन्न लाभदायक तत्व

पौधे अपनी वृद्धि के लिए मृदा, जल तथा वायु से कई तत्वों को ग्रहण करते हैं, लेकिन सभी अवशोषित तत्व पौधों के पोषण में भाग नहीं लेते हैं। जो तत्व पौधों के पोषण में भाग लेते हैं, पोषक तत्व कहलाते हैं। पौधे अपना भोजन मुख्यत: पत्तियों के हरे भाग (पर्णहरिम) की सहायता से वायु व कार्बन डाईऑक्साइड व भूमि से पानी लेकर कार्बोहाइड्रेट के रूप में तैयार करते है। पौधे अपने अन्य आवश्यक भोजन तत्व भूमि से घोलकर अथवा द्रव के रूप में जड़ों से प्राप्त करते हैं। पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक पोषक तत्वों को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है -

आवश्यक तत्व जिनकी अधिक मात्रा में आवश्यकता होती है		आवश्यक तत्व जिसकी कम अथवा सूक्ष्म मात्रा में आवश्यकता होती हैं
हवा या पानी से मिलने वाले तत्व	भूमि से मिलने वाले तत्व	भूमि से मिलने वाले तत्व
कार्बन (C)	नाइट्रोजन (N)	लोहा (Fe)
हाइड्रोजन (H)	फॉस्फोरस (P)	मैंगनीज (Mn)
ऑक्सीजन (O)	पोटेशियम (K)	तांबा (Cu)
	कैल्शियम (Ca)	जस्ता (Zn)
	मैग्निशियम (Mg)	बोरोन (B)
	गंधक (S)	मोलिब्डेनम (Mo)
		क्लोरीन (CI)
		कोबाल्ट (Co)

1) **मुख्य पोषक तत्व** - नाइट्रोजन, फॉस्फोरस तथा पोटेशियम मुख्य पोषक तत्व है। इन तीनों की पौधों को अधिक आवश्यकता होती है।

2) **गौण पोषक तत्व** - कैल्शियम, मैग्निशियम, सोडियम तथा सल्फर भी पौधों में पर्याप्त मात्रा में होने चाहिए, लेकिन इनका कार्य मुख्य पोषक तत्वों से कम होता है।

3) **सूक्ष्म पोषक तत्व** - पौधों को इन पोषक तत्वों की केवल सूक्ष्म मात्रा में आवश्यकता होती है, जैसे - आयरन, जिंक, कॉपर, मैंगनीज, बोरोन, मोलिब्डेनम, क्लोरीन, वेनेडियम, निकिल, कोबाल्ट आदि।

पौधों के अधिकतर अंग कार्बन, हाइड्रोजन व ऑक्सीजन के बने होते हैं तथा भूमि से प्राप्त होने वाले पोषक तत्वों की मात्रा बहुत ही कम होती है। कार्बन, हाइड्रोजन व ऑक्सीजन की कमी होने की संभावनाएं प्राय: कम होती है। अत: कार्बन, हाइड्रोजन व ऑक्सीजन आमतौर पर पौधों की वृद्धि में बाधक नहीं है। भूमि से प्राप्त होने वाले तत्वों की कमी पौधों की वृद्धि में बाधक बन सकती है।

◆ नाइट्रोजन

सुलभ रूप : नाइट्रेट (NO_3^-) तथा अमोनियम (NH_4^+) आयन के रूप में।

1) इसकी उपस्थिति में वानस्पतिक वृद्धि तेजी से होती है, किन्तु जड़ों की वृद्धि को यह मंद करता है।

2) यह पौधे में नाइट्रोजन नियंत्रक का काम करती है, जिससे फॉस्फोरस व पोटेशियम का पौधों द्वारा उपयोग सन्तुलित होता है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

3) नाइट्रोजन से गन्ना, गेहूं व जौ में कल्ले (Tillering) अधिक फुटते हैं तथा दानें व चारे की फसलों में प्रोटीन की मात्रा बढ़ती हैं। साथ ही दाने सुडोल व गुदेदार बनते है।

4) नाइट्रोजन पादत ऊतकों में पानी का अनुपात बढ़ाती है तथा कैल्शियम की मात्रा घटती है।

5) अधिकांश पौधे नाइट्रोजन का अवशोषण नाइट्रेट आयन के रूप में करते है, परन्तु कुछ फसलें, जैसे - धान, आलू, अमोनियम आयन के रूप में ग्रहण करते है।

6) अधिक नाइट्रोजन ग्रहण करने पर फसल काफी समय तक हरी बनी रहती हैं, जिससे पौधे बढ़ते है व गिरने लगते है। गिरने का मुख्य कारण पौधों की कोमलता होती है। नाइट्रोजन की कमी से पौधे हल्के पीले रंग के दिखाई पड़ते है व अत्यधिक कमी से पत्तियों का रंग सफेद हो जाता है।

- **फॉस्फोरस**

सुलभ रूप : $H_2PO_4^{-1}$ आयन तथा $H_2PO_4^{-2}$ आयन के रूप में।

1) यह एक मात्र ऐसा तत्व है, जिसकी कमी होने से पौधा अपना जीवन चक्र पूरा नहीं कर पाता, इसीलिए इसे जीवन की कुंजी (Key of Life) कहते है।

2) फॉस्फोरस से पौधों की जड़ों का विकास तेज एवं सुदृढ़ होता है, जो अन्य पोषक तत्वों के मृदा से चूषन में सहायक है।

3) यह नाइट्रोजन के हानिकारक प्रभावों को कम या उदासीन करता है, साथ ही पौधों में कीटों के आक्रमण को सहन करने की क्षमता बढ़ाता है।

4) यह जड़ों के समुचित विकास, फलों की परिपक्वता तथा फलों एवं बीजों के निर्माण में सहायक होता है।

5) इसकी कमी से पत्तियों का रंग हल्का बैंगनी या भूरा हो जाता है। पौधों में फॉस्फोरस गतिशील तत्व होता है, अत: इसकी कमी के लक्षण सबसे पहले नीचे की पत्तियों पर दिखाई देते है। पत्तियों के सीरे से यह रंग प्रारंभ होकर पत्तियों के किनारों की और बढ़ता है।

- **पोटेशियम**

सुलभ रूप : पोटेशियम आयन (K^+)।

1) यह एक चल तत्व है, जो पौधों के अंदर पोषक तत्वों के वाहन में सहायक होता है तथा पत्तियों में शर्करा एवं स्टार्च के निर्माण में वृद्धि करता है।

2) यह फसलों को गिरने से रोकता हैं, जड़ों को मजबूत बनाता है, फसल में बीमारी व कीट पतंगों के आक्रमण के प्रति रोधकता बढ़ाता है। इसकी उपस्थिति में फल काफी संख्या में तथा शीघ्र लगते है।

3) इसकी कमी से पत्तियां धब्बेदार व भूरी हो जाती है। कमी के लक्षण पहले पुरानी पत्तियों पर प्रदर्शित होते है व पत्तियां समय से पूर्व ही गिर जाती है। पत्तियों के किनारे झुलसे नजर आते है व पत्तियों के सिरे मुड़ने लगते है।

4) पोटाश पत्तियों की कार्यक्षमता को बढ़ाता है। साथ ही यह प्रोटीन के निर्माण में भी सहायक होता है, जिससे कोशिकाओं के निर्माण तथा विभाजन में सहायता मिलती है।

- **कैल्शियम**

सुलभ रूप : कैल्शियम आयन (Ca^{+2})।

1) यह एक अचल तत्व है, जो पौधों की जड़ों व वृद्धि करने वाली कलिकाओं का शीघ्र विकास करता है।

2) यह कोशिकाओं की दीवारें स्वस्थ्य तथा दाना व तना सख्त बनाता है।

3) इसकी कमी से जड़ों द्वारा नाइट्रेट के अवशोषण में वृद्धि तथा प्रोटीन निर्माण अधिक होता है।

4) पौधों में कैल्शियम का संचार पुराने अंगों से नए अंगों की ओर सुगमता से नहीं होने के कारण इसका प्रभाव सबसे पहले अग्रिम कलिकाओं (Terminal Bud) पर पड़ता हैं, जिससे वह सुख जाती है। नई पत्तियों के किनारे झुक, मुड़ या सिकुड़ जाते है। जड़ों का विकास अपूर्ण हो जाता है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

- **मैग्निशयम**

सुलभ रूप : मैग्निशियम आयन (Mg^{2+})।

1) यह तत्व पौधों में आसानी से चलायमान है, जो क्लोरोफिल की रचना में अति आवश्यक होता है।
2) यह पौधों के अंदर पोषक तत्वों के वाहन, अधिशोषण (Uptake) तथा कार्बोहाइड्रेट के संचालन में सहायक है।
3) पौधों में तेल, वसा, कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन व विटामिन बनाने में सहायक है।
4) इसकी कमी का प्रभाव सर्वप्रथम पौधे की निचली पत्तियों में दिखाई देता है। पत्तियां आकार में छोटी रह जाती हैं तथा ऊपर की ओर मुड़ जाती है। अधिक कमी से पुरानी पत्तियां सुख जाती है।

- **सल्फर**

सुलभ रूप : सल्फेट (SO_4^{2-})।

1) यह तत्व अमीनो अम्ल, जैसे - सिस्टाईन, सिस्टिन, मिथीयोनिन आदि के निर्माण में सहायक होता है।
2) प्याज, लहसुन तथा सरसों की फसल में गंध के लिए यह तत्व आवश्यक है।
3) इसकी पर्याप्त मात्रा से तम्बाकू की उपज 15-30 प्रतिशत, तिलहन फसलों में तेल की मात्रा में 4-9 प्रतिशत तथा गन्ने के रस की गुणता में वृद्धि होती है।
4) इसकी कमी से पौधे की वृद्धि धीमी हो जाती है। तना सख्त, छोटा तथा लाल हो जाता है।

- **लोहा**

सुलभ रूप : फैरस आयन (Fe^{2+})।

1) यह क्लोरोफिल का अंग नहीं है, किन्तु यह क्लोरोफिल के निर्माण के लिए आवश्यक होता है।
2) पौधों की कोशिकाओं में होने वाले ऑक्सीकरण व अवकरण में उत्प्रेरक का कार्य करता है।
3) कोशिका विभाजन में आवश्यक तथा कोशिकाओं की श्वसन क्रिया में ऑक्सीजन के वाहक का कार्य करता है।
4) इसकी कमी होने पर पौधे की नई-नई ऊपरी पत्तियां पहले पीली पड़ती है, अत्यधिक कमी से पत्तियां सफेद हो जाती है तथा तना छोटा रह जाता है।

- **मैंगनीज**

सुलभ रूप : मैंगनीज आयन (Mn^{2+})।

1) पत्तियों पर छिड़काव करने पर इसे पत्तियां सीधे ही अवशोषित कर देती है।
2) पौधे की विभिन्न वृद्धि क्रियाओं में उत्प्रेरक की भांति कार्य करता है।
3) पौधों में क्लोरोफिल व कार्बोहाइड्रेट के निर्माण में सहायक होता है।
4) अम्लीय मृदाओं में मैंगनीज की विषाक्तता (Toxicity) का प्रभाव कपास की फसलों में देखा जा सकता है। कपास की पत्तियां मुड़ी-तुड़ी सी हो जाती हैं तथा ऊपर काले-पीले रंग के धब्बे पड़ जाते है, जिसे Crinkle Leaf of Cotton कहा जाता है।
5) इसकी कमी से गन्ने में अंगमारी रोग हो जाता है।

- **बोरोन (Boron)**

1) परागकण, प्रजनन की क्रिया में व फल, बीज बनाने में सहायक होता है।
2) दलहन फसलों में राइजोबियम जीवाणु के लिए आवश्यक है।
3) पानी के शोषण को नियंत्रित करता हैं तथा पौधों में शर्करा के संचालन के लिए आवश्यक है।
4) इसकी कमी से दलहनी फसलों की जड़ों की ग्रन्थियों की वृद्धि रूक जाती है। कुछ पौधों में तने फट जाते है। नींबूवर्गीय पौधों की पत्तियों पर पारभाषक धब्बे बन जाते है।

- **तांबा (Copper)**

सुलभ रूप : कॉपर आयन (Cu^{2+})।

1) पौधे में विटामिन A बनाने में सहयोग करता है।
2) पौधों में वृद्धि एवं विकास की अनेक क्रियाओं को उत्तेजित करता है। जड़ों द्वारा अमोनिकल नाइट्रोजन के उपयोग में सहायक है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

3) यह अचल तत्व है, जो पौधे में उपस्थित एंजाइम के लिए इलेक्ट्रॉन वाहक का कार्य करता है, जो पौधों में ऑक्सीकरण व अपचयन की क्रियाओं को प्रभावित करता है।

4) इसकी कमी के लक्षण मुख्यत: कार्बनिक मृदाओं में देखे जा सकते है। इसकी कमी होने पर पत्तियां छोटी व पीली हो जाती है।

ऊर्जा स्थानांतरण में सहायक	P
शर्करा या कार्बोहाइड्रेट स्थानान्तरण में सहायक	K, Ca, B
क्लोरोफिल संश्लेषण में सहायक	Mg, Fe, Mn, S
क्लोरोफिल निर्माण में सहायक	N, K, Mg
(हरिमहिमता) के लिए जिम्मेदार	K, Ca, Mn, Mg

- **क्लोरीन (Chlorine)**

सुलभ रूप : क्लोराइड (Cl^-)।

1) यह तत्व पौधों की वृद्धि एवं विकास के लिए आवश्यक होता है।

2) पौधों की पत्तियों में पानी रोकने की क्षमता बढ़ाता है।

3) इसकी कमी होने से पौधों की जड़ों का विकास मुख्यरूप से नहीं हो पाता। यदि मृदा में क्लोरीन की मात्रा ज्यादा हो तो पत्तियां मोटी हो जाती हैं व मुड़ने लगती है।

4) क्लोरोफिल की रचना में सहायक होता है।

- **मोलिब्डेनम (Molybdenum)**

सुलभ रूप : मोलिब्डेट (MoO_4^{-2}) आयन के रूप में।

1) पौधों के लिए इसकी आवश्यकता बहुत कम मात्रा में होती है। यह तत्व दलहनी फसलों में नाइट्रोजन के स्थिरीकरण के लिए आवश्यक होता है।

2) यह विटामिन सी के संश्लेषण में आवश्यक होता है।

3) यह पौधों में नाइट्रेट तथा अमोनिया के अपचयन के लिए आवश्यक होता है।

4) इसकी कमी अम्लीय मृदाओं में पाई जाती है। इसकी कमी के लक्षण काफी कुछ नाइट्रेट के कमी वाले लक्षणों से मिलते हैं और इसकी कमी भी शिराओं के बीच पीलेपन से शुरू होती है।

- **सोडियम (Sodium)**

1) यह पौधों द्वारा जल ग्रहण करने की क्षमता को प्रभावित करता है।

2) यह पौधों में स्टोमेटा के खुलने में सहायक होता है।

3) यह पौधों में सूखे के प्रति, प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि करता है।

आकार IAS
Shaping Your Dreams

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

मृदा अपरदन
Soil Erosion

मृदा अपरदन एक भौतिक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा मृदा पदार्थ एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचते है। सामान्यत: भूमि की ऊपरी सतह पर कृषि योग्य मिट्टी की 15 से 25 सेमी. परत का हम मृदा कहते है। यह पोधों की वृद्धि एवं विकास के लिए आवश्यक पोषक तत्वों का भंडार है। प्रतिवर्ष कुछ प्राकृतिक शक्तियों, जैसे - जल तथा वायु द्वारा मृदा की ऊपरी परत बहकर अथवा उड़कर एक स्थान से दूसरे स्थानों पर एकत्रित होती रहती है। इससे अधिकांश पोषक पदार्थ मृदा से बहकर या उड़कर नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार वायु या जल द्वारा मृदा कणों का कटकर एवं बहकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जमा होने को मृदा अपरदन कहते हैं। अन्य शब्दों में "मृदा कणों के पृथक्करण तथा परिवहन एवं अन्यत्र जमा होने को मृदा अपरदन या मृदा क्षरण कहते हैं।" भारत में लगभग 150 मिलियन हेक्टेयर भूमि कटाव की समस्या से प्रभावित है, जिसमें से 111 मिलियन हेक्टेयर जल अपरदन तथा 39 मिलियन हेक्टेयर वायु अपरदन से प्रभावित है। वर्तमान में भारत में मृदा अपरदन की दर लगभग 2600 मिलियन टन प्रतिवर्ष है।

❐ मृदा अपरदन के कारण (Causes of Soil Erosion)

• मृदा के ऊपर वनस्पतियों का अभाव

वनस्पतियों से आच्छादित मृदा में अपरदन कम होता है। इनकी जड़े मृदा कणों को बांधे रहती हैं तथा जल के बहाव को कम कर देती हैं। मृदा में कार्बनिक पदार्थ का अनुपात बढ़ने से मृदा संरचना सुधरती है, जिससे जलस्त्रवण व पारगम्यता बढ़ जाती है अत: स्वष्ट है कि वनस्पतियों को मृदा सतह से हटाने पर मृदा अपरदन बढ़ जाता है ।

• जंगलों की कटाई

जंगलों की लगातार अंधाधुंध कटाई के फलस्वरूप मृदा अपरदन अधिक होता है और यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि पेड़ों के अभाव में वर्षा जल के अपधावन की गति अधिक होती है तथा मृदा में जलस्त्रवण कम होता है।

• खेतों में पशुओं का अत्यधिक चरना

घास अपरदन को रोकने मे काफी सहायक होती है। पशुओं द्वारा इनके अत्यधिक चरने या चारागाह को खेती योग्य मृदा में बदलने की प्रक्रिया, दोनों ही मृदा अपरदन में सहायक है।

• स्थानान्तरित खेती या झूम खेती

स्थानान्तरित खेती का भी मृदा अपरदन पर प्रभाव पड़ता है। एक स्थान पर अत्यधिक खेती करने से जब मृदा उर्वरता कम या समाप्त हो जाती है तब दूसरे स्थान पर खेती करना स्थानान्तरित खेती कहलाता है।

• अनुचित कृषि पद्धति

अनुपयुक्त कृषि पद्धतियों द्वारा भी मृदा अपरदन प्रक्रिया में वृद्धि हो जाती है। गहरे ढाल में दोषपूर्ण जुताई की विधियां तथा नई भूमि में भू-परिष्करण का गलत प्रयोग मृदा अपरदन को प्रभावित करते हैं। सघन खेती के लिए अत्यधिक कृषि कार्य भी मृदा पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं।

• मृदा का उचित प्रबंध न होना

मृदा का समय-समय पर समुचित प्रबन्ध आवश्यक होता है। समुचित प्रबंध के अभाव में मृदा अपरदन बढ़ जाता है।

• खेतों का समतलन होना

खेतों के समतल न होने से बारिश का पानी ऊंचाई की ओर से नीचे की ओर बहता है, जिससे मृदा अपरदन में वृद्धि होती है। सिंचाई जल भी खेत के ऊपरी सतह भाग से मिट्टी बहाकर निचले स्थानों में जमा कर देता है। ढालू धरातल पर वायु अपरदन भी अधिक प्रभावी होता है।

• फसल अवशेषों का जलाना

कृषकों द्वारा फसल अवशेषों को जला देने से मृदा में कार्बनिक पदार्थ की कमी है तथा मृदा आच्छादन भी कम होता है, जिससे मृदा अपरदन अधिक होता है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

❐ मृदा अपरदन के प्रकार (Types of Soil Erosion)

मृदा अपरदन निम्नलिखित प्रकार के होते हैं –

- **प्राकृतिक अपरदन (Natural Erosion)**

सामान्य परिस्थितियों में भी प्राकृतिक रूप से मृदा स्थानान्तरित होती रहती है, परन्तु यह परिवर्तन धीमी गति से होने के कारण इसका प्रारंभ में पता नहीं चल पाता है। कभी-कभी मृदा निर्माण की क्रिया से इस प्रकार के अपरदन की पूर्ति भी होती रहती है। इस प्रकार के अपरदन से कोई भी समस्या नहीं होती है। यह अपरदन सामान्य (Normal) अपरदन तथा भू-गर्भीय अपरदन (Geological Erosion) भी कहलाता है।

- **त्वरित अपरदन (Accelerated Erosion)**

मृदा अपरदन जब सामान्य गति से अधिक होता है, तो वह विनाशकारी एवं अनुत्पादक (Unproductive) हो जाता है, उसे त्वरित अपरदन कहते हैं। जब मनुष्य या जानवर विभिन्न क्रियाओं, जैसे – वनस्पति को मृदा से हटाना, बिना सोचे समझे जंगलों की कटाई, चरागाहों पर पशुओं का अत्यधिक चरना, दोषपूर्ण कृषि क्रियाएं आदि द्वारा प्रकृति के संतुलन में बाधा डालता है, तब मृदा का ह्रास होता है। त्वरित अपरदन भूमि संसांधनों (Land Resources) के निम्नीकरण (Degradation) की एक प्रमुख प्रक्रिया है और इस अपरदन द्वारा भारत के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल की 50 प्रतिशत भूमि समस्याग्रस्त है। इस प्रकार यह अपरदन अधिक हानिकारक होता है।

- **वायु अपरदन (Wind erosion)**

वायु अपरदन प्राय: तेज वायुवेग वाले शुष्क एवं वनस्पति विहीन क्षेत्रों में होता है। मृदा सतह के कण तेज वायु तथा तूफान के साथ उड़कर अपने मूल स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरित हो जाते हैं तथा वायु/तूफान की गति धीमी होने पर ये मृदा कण टीलों के रूप में जमा हो जाते हैं। इस प्रकार उर्वरा मृदा कृषि योग्य नहीं रहती है।

- **जल अपरदन (Water erosion)**

जल अपरदन को निम्नलिखित उपवर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है –

1) **अस्फुरण अपरदन (Splash Erosion)** – जल अपरदन की बूंद ऊपर से पृथ्वी पर गिरती है, तो उस स्थान की नग्न मिट्टी के छोटे-छोटे कण बूंद के गिरते हुए बल के कारण टूटकर छिन्न-भिन्न हो जाते हैं अर्थात, ये कण अपने मूल स्थान से अलग हो जाते हैं। गिरती हुई वर्षा की बूंद केवल मृदा कणों को ही तितर-बितर नहीं करती, बल्कि भूमि सतह की सघनता के लिए भी उत्तरदायी है, जिससे जलशोषण एवं जल प्रवेश क्षमता कम हो जाती है। यह जल अपरदन की प्राथमिक अवस्था है।

2) **परत अपरदन (Sheet Erosion)** – कम ढलान वाले खेतों में तेजी से बहने वाले वर्षा जल के द्वारा पृथ्वी की ऊपरी उपजाऊ मृदा की सतह पानी के साथ कटकर बह जाती है। यह अपरदन मृदा उर्वरता के लिए बहुत हानिकारक होता है। कभी-कभी अंत में सूक्ष्म अवनालिका (Gully) भी बनी हुई दिखाई देती हैं। इस प्रकार के अपरदन में ऊपरी सतह की मिट्टी धीरे-धीरे बहती रहती है और मृदा का रंग हल्का हो जाता है।

3) **रिल अपरदन (Rill Erosion)** – यह परत अपरदन की द्वितीय अवस्था है, जिसमें छोटी-छोटी नालियां बनने लगती हैं और वे धीरे-धीरे आकार और रूप में बढ़कर चौड़ी और गहरी हो जाती हैं। भुरभुरी मृदा विशेषकर सिल्ट युक्त मृदा में इस प्रकार का अपरदन अधिक होता है। यह अपरदन ढालू या खाली भूमि में अधिक होता है।

4) **अवनालिका अपरदन (Gully Erosion)** – यह रिल अपरदन की अंतिम अवस्था है। रिल अपरदन का समय से रोकथाम न करने से यह अपरदन प्रारंभ हो जाता है। इस अपरदन में नालियों का अधिक गहरी व चौड़ी होने के कारण मृदा कृषि योग्य नहीं रहती है।

5) **सरिता तीर अपरदन (Stream bank Erosion)** – नदियां अपने किनारों की मिट्टी का कटाव करती रहती है। विशेष रूप से बरसात में भीषण बाढ़ आने से यह क्षति सर्वाधिक हो जाती है।

6) **समुद्र तट अपरदन (Sea Shore Erosion)** – यह कटाव वायु तथा जल के संयुक्त कुप्रभाव से होता है। समुद्र जल की लहरों के तेज थपेड़े किनारों की मृदा का कटाव करते हैं, जो शुष्क होने पर तेज वायु द्वारा स्थानान्तरित हो जाते हैं। द. भारत में विशेषत: मद्रास व केरल राज्यों में इसी तरह मृदा अपरदन होता है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

7) **स्लिप अपरदन (Slip Erosion)** - जल से संतृप्त मृदाओं में भूकम्प तथा गुरूत्व बल के प्रभाव से बड़ी-बड़ी चट्टानें खिसककर नीचे पहुंच जाती हैं, जिसे हम स्लिप अपरदन के नाम से जानते हैं।

❐ मृदा अपरदन को प्रभावित करने वाले कारक (Factors affecting Soil Erosion)

मृदा अपरदन को निम्नलिखित कारक प्रभावित करते हैं -

- **भौतिक कारक**

1) **ताप (Temperature) -** चट्टानें ताप एवं प्रशीतन प्रभावों के कारण टूट जाती हैं तथा इन दरारों में वर्षा के समय में पानी भर जाता है, जो ताप के कम होने पर जम जाता है जिससे इसके आयतन में वृद्धि होती है और वह बढ़ा हुआ आयतन चट्टानों को टुकड़ों में तोड़ देता है। गर्मियों में बर्फ के तीव्रता से पिघलने पर अपरदन की मात्रा बढ़ जाती है।

2) **स्थलाकृति (Topography) -** ढाल वाली भूमि पर जल द्वारा अपरदन, ढाल की मात्रा तथा लंबाई पर निभर होता है। ढाल अधिक होने पर जल का बहाव अधिक होता है। यदि ढाल की मात्रा चार गुनी बढ़ जाती है, तो जल के ढाल पर बहने की गति भी लगभग दो गुनी हो जाती है। ढाल की लंबाई में वृद्धि होने पर मृदा अपरदन में भी वृद्धि होती है।

3) **वनस्पति (Vegetation) -** किसी भी वनस्पति का आवरण मृदा अपरदन को कम करता है। इसके प्रभाव से जल के काटने की शक्ति कम हो जाती है तथा पानी का बहाव कम हो जाता है, जिससे पानी भूमि सतह पर अधिक समय तक शोषित होता है। वनस्पति की जड़ें मृदा कणों का काम करती है तथा जल अवशोषण में सहायक है।

4) **मृदा कारक (Soil Factors) -**जल द्वारा मृदा अपरदन निम्नलिखित 3 प्रकार के मृदा कणों पर निर्भर है - **1)** मृदा की जल धारण क्षमता, **2)** मृदा की अपरदन के लिए प्रतिरोध एवं **3)** मृदा की पारगम्यता। तुदा सतह पर पत्थरों की उपस्थिति से अपरदन कम हो जाता है। बारीक गठन वाली क्षारीय मृदायें अधिक अपरदनीय होती हैं। दानेदार संरचना की मृदाओं में अधिक रन्ध्र होने के कारण वे अधिक पानी शोषित करती हैं। इस प्रकार इसमें अपरदन कम होता है।

- **मानवीय कारक (Human Factors)**

1) **जुताई का ढंग** - पहाड़ी क्षेत्रों में खेतों की जुताई नीचे से ऊपर की और या ढाल के समानान्तर की जाती है, तो अपरदन में वृद्धि होती है और जुताई के कूंड़ों में होकर जल के बहाव से अन्त में अवनालिका बन जाती है।

2) **फसल उगाने का ढंग** - यदि फसलों की लाइन ढाल के समानान्तर न होकर ढाल के विपरीत होती है, तो मृदा अपरदन कम हो जाता है।

3) **फसल चक्र का प्रभाव** - उचित प्रकार का फसल चक्र मृदा को साल के अधिक समय वनस्पति से ढककर, मृदा की भौतिक दशाओ को सुधार कर और कार्बनिक पदार्थ करके मृदा अपरदन को कम करता है।

4) **कार्बनिक पदार्थ** - वनस्पति पदार्थ के साथ में कम्पोस्ट, गोबर की खाद मिलाने और हरी खाद उगाने से भी अपरदन कम हो जाता है।

- **जैविक कारक (Biological Factors)**

मृदा में रहने वाले जीवों केचुओ,रोडेन्टस , चूहे, लोमड़ी आदि मृदा अपरदन को प्रभावित करते हैं। केचुओं द्वारा निर्मित नालियों में मृदा में वायु का संचार पहले की अपेक्षा ढाई गुना बढ़ जाता है और इस प्रका नालियां प्रवेश एवं रिसने की गति को बढ़ा देती है। शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में रोडेन्टस भुरभुरी मृदा को ऊपर लाकर अपरदन की वृद्धि में सहायक है। कुछ स्थानों पर लोमड़ी, चूहे तथा अन्य जीव जो मृदा में बिल बनाकर रहते हैं मिट्टी को खोदकर बाही निकालते हैं। इस प्रकार मृदा अपरदन में वृद्धि होती है ।

- **अन्य कारक (Other Factors)**

जल के बहाव में जो पदार्थ कमी करते हैं, वे अपरदन को भी कम करते हैं। प्रत्येक पौधा, पत्थर, ढेले, इमारतें जल के बहाव को और अन्ततः मृदा अपरदन को कम करते हैं।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

❐ मृदा अपरदन की रोकथाम के उपाय

अपरदन द्वारा प्रतिवर्ष बहुत बड़ी मात्रा में मिट्टी की क्षति होती है, इसलिए इसे रोकना अत्यन्त आवश्यक है। इसको रोकने के लिए निम्नलिखित उपाय किए जाते है –

1) **कृषि संबंधी क्रियाएं** – इसमें भू–परिष्करण, फसल उत्पादन की विधियां और खाद का प्रयोग आदि शामिल है। यदि ये विधियां उचित ढंग से अपनाई जाए, तो अपरदन होने वाले क्षेत्र से मृदा कटाव कम हो जाएगा और इन विधियों को यांत्रिक विधियों और वनरोपण के साथ अनुपूरित किया जाये, तो दूसरे नष्ट हुए क्षेत्र कृषि योग्य क्षेत्र में बदले जा सकते हैं, इन्हें निम्नलिखित उदाहरण से समझा सकते हैं –

   a) **कन्टूर फार्मिंग** – ढाल वाली भूमि पर कन्टूर रेखा के अनुसार जुताई आदि क्रियायें ढाल के विपरीत करते हैं। इस प्रकार के ढाल के विपरीत कन्टूर रेखा पर बहुत सी कूंड रहती हैं जो कुछ सीमा तक नीचे की ओर आने वाले जल की गति में रूकावट डालती है जिससे ऊपर से पानी के साथ आई हुई आंशिक मृदा इन कूंड़ों में संचित हो जाती है। प्राय: 1–2 प्रतिशत ढाल वाली मृदाओं में कन्टूर फार्मिंग में स्ट्रिप, क्रॉपिंग अपरदन को और अधिक प्रभावशाली ढंग से कम करती ह

   b) **भू–परिष्करण** – भू–परिष्करण विधियां एवं कृषि यंत्र मृदा संरचना के सुधारने में सहायक होते हैं। कन्टूर, भू–परिष्करण मृदा संरचना में अत्यन्त आवश्यक है। शुष्क कृषि क्षेत्रों में भू–परिष्करण उथला होना चाहिए। उथली जुताई अधिक जल शोषण में सहायक है। प्राय: गहरी जुताई कभी–कभी मृदा अपरदन में सहायक होती है।

   c) **मल्च** – घास, पत्तियां, भूसा, हे इत्यादि कार्बनिक पदार्थ मल्च के रूप में प्रयोग किए जाते हैं। मल्च मृदा अपरदन को विभिन्न प्रकार से नियंत्रित करते हैं।

2) **फसल चक्र** – मृदा संरक्षण में अपनाए गए फसल चक्रों में यह सिद्धांत अपनाया जाता है कि अधिकाधिक समय तक घासों एवं दलहनी फसलों के मिश्रण से भूमि को आच्छादित रखा जाए। एक सर्वोत्तम फसल चक्र का प्रयोग मृदा के ढाल, मृदा प्रकार, अपरदन की प्रकृति एवं मात्रा तथा मृदा की भौतिक एवं रासायनिक क्रियाओं पर आधारित होता है । फसल चक्र मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा में वृद्धि करता है।

3) **मेड़बन्दी करना** – वह क्षेत्र जो प्रतिवर्ष बाढ़ ग्रस्त हो जाते है वहां अवनालिका अपरदन द्वारा बड़े–बड़े गड्ढे बन जाते हैं। इससे बचाव के लिए खेतों के चारों तरफ ऊँची मेड़ तथा बांध बना देना चाहिए तथा असमतल भूमि को समतल कर देना चाहिए। अवनालिका अपरदन वाले क्षेत्रों में घास की पट्टियां तथा वृक्षों का रोपण लाभप्रद होता हैं। यह स्पष्ट हो गया है कि घासों में मृदा कणों को आपस में बांधने की क्षमता होती है। कुछ घासें सूखे में भी उगाई जा सकती हैं।

4) **अस्थाई कृषि पर प्रतिबंध लगाना** – भू–मध्य रेखीय वन क्षेत्रों में प्रचलित अस्थाई कृषि या झूमिंग कृषि पर कड़ाई से प्रतिबंध लगाया जाना चाहिए, क्योंकि अस्थाई कृषि में वनों को काटने से मृदा अपरदन में वृद्धि होती है। इसके साथ भूमि की उर्वरता का शोषण करने के उपरान्त उसे व्यर्थ छोड़ दिया जाता है। अत: आवश्यक हैं कि अस्थाई कृषि या स्थानांतरित पर प्रतिबंध लगाया जाए।

5) **अनियंत्रित पशुचारण पर प्रतिबंध** – अनियंत्रित पशुचारण पर पूर्ण एवं प्रभावी प्रतिबंध लगाना आवश्यक है, क्योंकि इससे एक ओर वनस्पतिक आवरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है तो वहीं दूसरी ओर मिट्टी के कण ढीले पड़ जाते है। उक्त दोनों प्रक्रियाओं से मिट्टी के कटाव को प्रोत्साहन मिलता है।

6) **वृक्षारोपण** – पेड़–पौधे मृदा अपरदन के नियंत्रण के लिए अत्यन्त प्रभावशाली होते हैं। ये मृदा पर बूंदों के सीधे प्रहार को रोककर मृदा का प्रकीर्णन नहीं होने देते हैं। ये मृदा पर बूंदों के सीधे प्रहार का रोककर मुदा का प्रकीर्णन नहीं होने देते हैं तथा अपनी पत्तियों द्वारा जल वाष्पोत्सर्जल करके मृदा में जल की मात्रा को नियंत्रित करके जल अपधावन को कम करते हैं। अपनी जड़ प्रणाली द्वारा से मृदा कणों को आपस में बांधकर तथा मृदा में कार्बनिक पदार्थ मिलाकर मृदा के भौतिक एवं रासायनिक गुणों में सुधार करते हैं। प्राय: वृक्षारोपण में निम्नलिखित पेड़ों का चुनाव किया जाता है – बबूल, बेर, अमलताश, इमली, जामुन, आम, शहतूत, खजूर, नीम, पलाश आदि।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

7) **आवरण फसलों को लगाना** - जब किसी क्षेत्र अथवा प्रदेश को कुछ समय के लिए खाली छोड़ना होता है, तो ऐसी भूमि को मृदा अपरदन से बचाने के लिए उस क्षेत्र में घास या फलियों वाली फसलें आवरण फसल के रूप में लगा देनी चाहिए। जैसे- ले-कृषि में फसलों के साथ फसल चक्र में घासों को उगाया जाता है, जो मृदा संरचना के निर्माण में सहायक होने के साथ-साथ मृदा अपरदन को भी नियंत्रित करती है। भारत में यह प्रणाली नीलगिरी और इसके समान अन्य जगहों पर खूब अपनाई जा रही हैं।

❐ मृदा अपरदन के प्रभाव (Effeacts of Soil Erosion)

प्राय: मृदा अपरदन के कारण उर्वरता की वार्षिक हानि फसलों द्वारा प्रयोग की गई उर्वरता से लगभग 20 गुनी अधिक है। मृदा उथली हो जाती है क्योकि पानी ऊपर की मृदा को लगातार बहा ले जाता है अत: भूमि की उत्पादकता कम हो गई है जिससे जान और माल दोनेा की प्रतिवर्ष हानि होती है। नदियों की जल धारण क्षमता कम होने से प्राय: संपूर्ण व्यवस्थायें भंग हो जाती हैं।

भारत में मृदा अपरदन की समस्या कुछ क्षेत्रों में तो इनती विकराल हो गई है कि वहां खेती करना असंभव सा प्रतीत होता है। उप्र तथा मध्यप्रदेश मे चंबल तथा यमुना नदियों के खड्ड क्षेत्र, गुजरात की कठोर भूमियां खेती के लिए प्राय: अनुपयुक्त हो चुकी है। कृषि क्षेत्रों के अतिरिक्त उपेक्षित चरागाहों, बंजर भूमियों,सड़कों और रास्तों के पास भी कटाव होता है जिससे रुकावटें पैदा हो जाती हैं।

अत: मृदा अपरदन से कृषि एवं कृषि अयोग्य दोनों प्रकार की भूमियां प्रभावित होती हैं। मृदा अपरदन के परोक्ष प्रभाव इस प्रकार हैं -

- **भूमि निम्नीकरण (Land Degradation)**

हमारी खाद्य एवं पर्यावरण सुरक्षा के लिए भूमि निम्नीकरण एक खतरा है। देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 45 प्रतिशत भाग विभिन्न निम्नीकृत कारकों से निम्नीकृत हो चुका है, जिसमें से 65 प्रतिशत अधिक भूमि निम्नीकरण जल एव वायु अपरदन से होता है।

- **मृदा उत्पादकता में ह्रास (Loss in Soil Productivity)**

मृदा अपरदन से उपजाऊ मृदा की पृष्ठ सतह के कटकर बह जाने से पादक पोषक तत्वों का भी ह्रास होता है तथा मृदा के महीन कण भी विस्थापित हो जाते हैं। इसी प्रकार वायु अपरदन के प्रभाव से मृदा की ऊपरी सतह पर कम उर्वर रैतीली परत जमा हो जाने से अनुत्पादक आवरण अनता है। अत: मृदा अपरदन से प्रभावित मृदा की उत्पादकता निरन्तर घटती रहती है। मृदा की गहराई कम होने से उपज में सार्थक कमी होती है। एल्युमिनियम से निर्मित गहरी मृदाओं में सामान्य जल अपरदन से गहरी लाल एव काली मृदाओं की अपेक्षा मृदा उत्पादकता में कम कमी होती है।

- **बाढ़ आना (Floods)**

मृदा अपरदन से नदियों, नालों, जलाशयों एवं समुद्र में सिल्ट के लगातार जमान होने से इनमें पानी को बहाकर ले जाने एवं एकत्र करने की क्षमता कम होती जाती है। अत: वर्षा का पानी नदी एवं नालों से उफनकर बाढ़ का रूप ले लेता है, जिससे आस पास के क्षेत्र में तबाही होती है। जलाशयों एवं झीलों में सिल्ट जमा होने से इनकी जल संचय क्षमता कम हो जाती है, जिससे वर्षा के बाद आवश्यक जलापूर्ति की परेशानी उत्पन्न होती है। समुद्र में सिल्ट जमा होने से समुद्री जहाजों के मार्ग अवरूद्ध हो जाते हैं।

- **सड़क एवं जल मार्ग में अपरोध**

पर्वतीस एवं मैदानी क्षेत्रों में मृदा अपरदन से सड़क एवं रेलमार्ग में अवरोध पैदा होता है। ऊपरी क्षेत्रों से बहकर आने वाला पानी सड़कों को काट देता है, रेल की पटरियों को उखाड़ देता है या इतनी सिल्ट एवं सिलाखण्ड जमा हो जाते हैं कि रेल एवं सड़क आवागमन बुरी तरह अवरूद्ध हो जात है। तेज तूफान एवं आंधियों से भी सड़क एवं रेलमार्ग पर रेत जाम हो जाने से मार्ग अवरूद्ध हो जाता है।

- **वनस्पति आच्छादन में कमी**

मृदा अपरदन से ऊपरी उपजाऊ सतह के कट जाने से वनस्पति आच्छादन में भी कमी आती है। अधोसतह में जल आसानी से प्रवेश नहीं कर पाता, जिससे विशेष रूप से असिंचित क्षेत्रों में आगामी फसल के लिए जल और नमी संचित नहीं हो पाती है। वायु अपरदन से बीजों के अंकुरण एवं वनस्पति आवरण रेत से दब जाते हैं, जिससे वनस्पति आच्छादन में निरन्तर कमी होती जाती है। वर्तमान में देश में वनों का कुल प्रतिशत भारत के कुल क्षेत्रफल का 24.01 प्रतिशत है, जो 33 प्रतिशत से कम है। मरूस्थलीकरण तथा वनों की अंधाधुंध कटाई से वनों की मात्रा ओर भी कम होती जा रही है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

- **पर्यावरण प्रदूषण (Environmental Pollution)**

अवसाद (Sediment) एक मुख्य प्रदूषक (Pollutant) है। भारत में स्थिति अधिक दयनीय है, यहां पर कृषि भूमि पर अवसाद कर दाब कम होने की बजाय विकास क्रियाओं के कारण बढ़ता जा रहा है। यदि मृदा अपरदन की वर्तमान दर को नहीं रोका गया तो परिणाम और भयंकर हो सकते हैं।

- **जैव विविधता का ह्रास (Loss of Biodiversity)**

जैव विविधता का ह्रास आज पूरे संसार में मुख्य समस्या है। भारत की जैव विविधता विश्व में अनोखी है, यहां लगभग 4500 प्रजातियां (Species) जंगली पौधों तथा 77000 से अधिक प्रजातियां जंगली जानवरों (Wild Animals) की पाई जाती हैं, जो विश्व के कुल जंगली जीवन का 6.5 प्रतिशत है। देश की जैव विविधता में मृदा अपरदन से अभी तक 20 प्रतिशत का ह्रास हो चुका है। मृदा अपरदन से बीजों के साथ-साथ मृदा के पोषक तत्व भी पानी में बह जाते हैं। इस प्रकार जैव विविधता का ह्रास होता है।

- **कृषि की विभिन्न क्रियाओं में बाधा (Hinderance in farming operations)**

भूमि के ऊपर जो भूपरिष्करण क्रियायें की जाती है। भूमि के कटाव से उनमें बाधा पड़ती है, क्योंकि भूमि की ऊपरी मुलायम सतह बहकर नष्ट हो जाती है और नीचे की कठोर सतह में भूपरिष्करण की क्रियायें सुविधापूर्वक नहीं हो पातीं। यदि भूमि के कटाव को रोका न जाए, तो कुछ समय बाद साधारण कटाव की नालियां गहरे नालों (Gully) के रूप में बदल जाती हैं व अंत में खड्ड (Ravines) का रूप धारण कर लेती हैं जो भूमि पर प्रत्येक कृषि कार्य के लिए बाधक होते हैं।

- **मृदा-क्षरित पदार्थों का कृषि योग्य भूमि पर एकत्रीकरण (Deposition of sand etc. on agricultural land)**

मृदा कटाव उस भूमि कि उत्पादन क्षमता को तो कम करता है जहां पर यह होता है साथ-साथ यह क्षरित पदार्थ जो रेत (Sand)के रूप में होता है, कृषि योग्य भूमियों पर एकत्रित होकर उनकी भी उत्पादन क्षमता को कम कर देता है। अपधावन के अंदर मोटे कण, कंकड़-पत्थर नजदीक की भूमियों पर छोड़ दिए जाते हैं व साद (Silt) एवं मृत्तिका (Clay) के कण हल्के होने के कारण अपधावन में दूर तक बहाकर ले जाए जाते हैं।

- **जलाशय, जलमार्ग, झील एवं बंदरगाहो पर प्रभाव (Silting of tank reserviors, lakes, river and harbours)**

मृदा-क्षरण द्वारा नष्ट हुई मिट्टी हमारे तालाब व बांधों में एकत्रित होकर उनकी पानी रखने की क्षमता को घटाती है। इस एकत्रित पानी का उपयोग अधिकतर खेती की उस समय सिंचाई करने में होता है जब वर्षा नहीं होती। उधर बंदरगाहों पर जहां से विदेशी व्यापार पानी के जहाजों द्वारा किया जाता है। मिट्टी एकत्रित होने पर , जहाजों के आने जाने को अवरूद्ध करती है। अत: इस प्रकार भूमि का क्षरण हमें अनेक क्षेत्रों में अधिक हानि पहुंचाता है।

- **जल पूर्ति पर प्रभाव (Effect on water supply)**

भूमि की ऊपरी सतह जो क्षारण के फलस्वरूप नष्ट हो जाती है। अपनी नीचे की अधोसतह को खुला कर देता है यह सतह आने वाली फसल के लिए अपने अंदर जल का संचय नहीं कर पाती। साथ ही साथ इसकी ऊपरी सतह की बनावट भी इस प्रकार की हो जाती है कि वर्षा के दिनों में जल का इसके द्वारा संचार नहीं हो पाता फलस्वरूप नीचे की सतहों मे भी पानी का एकत्रीकरण नहीं हो पाता है। इसके अतिरिक्त जब भूमि का कटाव बड़े नालों के रूप (Gullies) धारण कर लेता है तो इनकी गहराई इतनी बढ़ जाती है कि निचली सतहों तक का जल इसके द्वारा बहकर नष्ट होता रहता है अत: अधो-मृदा (Sub-soil) में जल की इस प्रकार की क्षति के कारण उसके ऊपर वनस्पति नहीं उग पातीं।

- **सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति पर प्रभाव (Effect to social and economic consequences)**

उपर्युक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि मृदा-क्षरण से मृदा की उपजाऊ शक्ति नष्ट होती है फलस्वरूप फसलों की उपज कम होती है। अत: किसानों की आर्थिक दशा खराब हो जाती है। साथ-साथ इसका प्रभाव समाज के दूसरे वर्ग के लोगों पर भी पड़ता है क्योंकि जब किसी आवश्यक फसल की उपज कम होगी तो उसके मूल्य में वृद्धि हो जायेगी । साथ-साथ मृदा का क्षरण होने पर उसका मूल्य भी गिर जाता है व ऊंची-नीची भूमियों का दृश्य भी आकर्षक नहीं होता। अगर इस प्रकार की भूमियों में खेती करते रहे तो विभिन्न कृषि क्रियाओं पर लागत इतनी आ जाती है कि आय से व्यय अधिक हो जाता है। अत: यह कार्य अर्थहीन होता है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

जल प्रबंधन
Water Management

मानव, जंतु तथा पेड़-पौधों के जीवन के लिए जल अपरिहार्य है। यह सभी जीवधारियों के जीवन का महत्वपूर्ण अंश है। पृथ्वी पर जल 3 रूपों ठोस, द्रव तथा गैस अवस्था में पाया जाता है। समुद्र में पृथ्वी के कुल पानी का लगभग 97 प्रतिशत होता है, जो सिंचाई के लिए अनुपयोगी होता है। पूरे जल की मात्रा का 2.60 प्रतिशत ताजा जल होता है। इनमें लगभग 77 प्रतिशत ध्रुवों की बर्फ के रूप में उपस्थित होता है। पूरे जल का एक बहुत छोटा-सा अंश पृथ्वी पर भू-जल, झीलों, नदियों और वातावरण में उपस्थित होता है, जिसका उपयोग फसलों की सिंचाई, पेयजल तथा अन्य कार्यों के लिए किया जा सकता है।

धरती पर गिरने वाले वर्षा जल की प्रत्येक बूंद को रोका जा सकता है। बशर्ते इसके लिए संरचनाओं की ऐसी श्रृंखला तैयार कर दी जाए कि पानी की एक भी बूंद 10 मीटर से अधिक दूरी पर न बहने पाए। इसे कोई जल संरचना रोक ले और धरती में अवशोषित कर ले, यही संपूर्ण जल प्रबंधन है। जलग्रहण का सिद्धान्त है कि 'पानी दौड़े नहीं, चले' है, जबकि सम्पूर्ण जल प्रबंधन का सिद्धान्त है कि 'पानी न दौड़े न चले, बल्कि रेंगे तथा अंतत: रुक जाए और जमीन की गहराइयों में ऐसा समा जाए कि उसे सूरज की रोशनी भी उड़ा के न ले जाए।' वह जमीन के अंदर धीरे-धीरे चलता हुआ वहां निकले, जहां हम चाहते हैं (कुओं में, तालाबों में, हेंडपंपों में, ट्यूबवेल में, नदी-नालों में)। इस प्रकार से प्राप्त जल स्वच्छ एंव सुरक्षित होता है और लंबे समय तक मिलता/बहता रहता है।

इन संरचनाओं में 5-10 सेमी वर्षा जल एक बार में रोका जा सकता है। इससे अधिक वर्षा यदा-कदा ही दो-तीन वर्षों में एक बार होती है। इस प्रकार सम्पूर्ण वर्ष में 100 सेमी तक की वर्षा को भूमि में अवशोषित किया जा सकता है। यह जल भूमि में अवशोषित होकर धीमी गति से कुआं, ट्यूबवेल, हेंडपम्प व तालाबों में आगामी 6-12 माह तक प्राप्त होता रहता है। इससे हमारी खरीफ की फसल सुनिश्चित होती है, सूखे से मुक्ति मिलती है, रबी की फसल भी पर्याप्त होती है एवं गर्मी में पेयजल संकट नहीं होता है।

भारत में औसत वर्षा 112 सेमी होती है। भारत में होने वाली वर्षा की प्रकृति मानसूनी है, जिसका एक निश्चित समय होता है। भारत में होने वाली मानसूनी वर्षा का वितरण भी असमान है। इसमें से 75 प्रतिशत जल की प्राप्ति दक्षिण-पश्चिम मानसून से होती है। मानसून की अनिश्चितता तथा वर्षा के असमान वितरण के कारण सम्पूर्ण भारत में जल की समस्या दिखाई देती है। भारत में अधिकांश जल का उपयोग कृषि क्षेत्र में सिंचाई के रूप में किया जाता है। इसके अलावा जल का उपयोग पेयजल आपूर्ति, उद्योगों आदि क्षेत्रों में भी होता है।

बढ़ती हुई जनसंख्या तथा घटती हुए जल के स्रोतों के कारण जल की समस्या विकराल रूप ले लेती है। इस समस्या के समाधान हेतु तथा आम लोगों तथा कृषि केा जल की आपूर्ति सुनिश्चित करने हेतु जल के संरक्षण के साथ-साथ इसके समुचित उपयोग की आवश्यकता है। इसी आवश्यकता को देखते हुए जल प्रबंधन की अवधारणा को बढ़ावा दिया जाता है, ताकि जल उसके वितरण तथा उसके संरक्षण का प्रयास किया जा रहा है।

❐ जल संरक्षण के उपाय (Methods of Water Conservation)

जीव प्राकृतिक संसाधनों से पोषण प्राप्त करते है, परन्तु वर्तमान समय में मानव कुकृत्यों द्वारा स्वच्छ पेयजल सुलभ नहीं रहा और प्रदूषित जल के विस्तार से समस्त पादप तथा जंतुओं के अस्तित्व को खतरा उत्पन्न हो गया है। यही नहीं वर्तमान में जनसंख्या वृद्धि, नगरीकरण, वनोन्मूलन आदि के कारण जल संकट उत्पन्न हो गया है। अत: इस समस्या से उबरने के लिए आज जल संरक्षण की अति आवश्यकता है। जल संरक्षण के लिए निम्नलिखित उपाय कारगर सिद्ध हो सकते हैं -

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

- **वर्षा जल का संरक्षण (Conservation of Rain Water)**

जल संरक्षण का पहला सिद्धांत है कि जल का संरक्षण उसी स्थान पर होना चाहिए, जहां जल की बूंद गिरती है। जब पृथ्वी पर गिरी जल की बूंद अपने स्थान से आगे बढ़ जाती है, तो उसके संरक्षण का प्रयास निरर्थक हो जाता है। भूमि पर स्थित पानी अपने दबाव से धरती के भीतर अपने लिए जगह बनाता है। यदि वर्षा की बूंदें गिरने के बाद बह जाती हैं, तो धरातल पर अपेक्षित सजलता उत्पन्न नहीं कर पाती। इसलिए आवश्यक है कि वर्षा की बूंदें जहां गिरे, वहीं उसका संरक्षण हो। जब उस स्थान पर पर्याप्त मात्रा में सजलता आ जाए, तभी बूंदें आगे बढ़े।

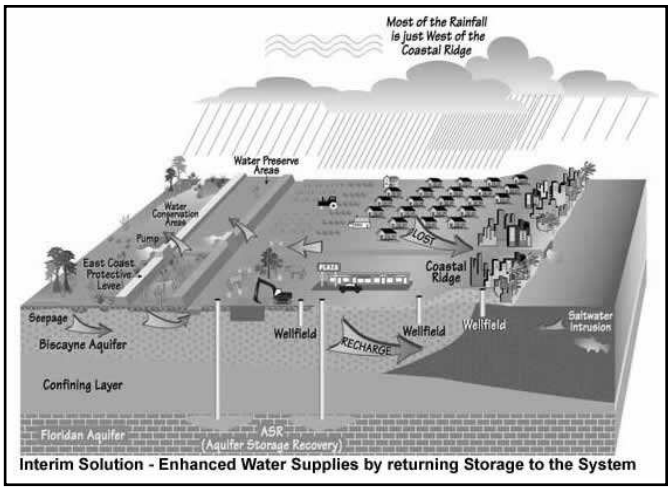

Interim Solution - Enhanced Water Supplies by returning Storage to the System

जल संरक्षण वर्षा से जल को प्राप्त करके, उसके प्रवाह को नियमित करके, जलाशयों में जल का निश्चित भंडार बनाए रखकर तथा उसकी अधिकतम उपयोगिता को सुनिश्चित करके किया जा सकता है। जैसे ही वर्षा का जल पृथ्वी पर गिरता है, उसके अधिकांश भाग को भूमिगत करने का प्रयास करना चाहिये। इससे उसका संरक्षण होता है। यह तभी संभव है, जब सतह पर घना वनस्पति आवरण हो। अच्छे वन जल को सर्वोत्तम ढंग से संचित करते हैं। ये ऐसे जलाशय हैं, जिनमें कभी अवसाद एकत्रित नहीं होता। इससे भूमिगत जल-स्तर में वृद्धि होती है।

- **कुओं एवं नलकूपों का पुनर्भरण (Refilling of Well and Tubewell)**

देशभर में मुख्यत: ग्रामीण क्षेत्रों में कुएं आज भी पेयजल के मुख्य स्रोत माने जाते हैं। सभी को पर्याप्त मात्रा में पेयजल उपलब्ध हो सके, इसके लिए आवश्यक है कि जो कुएं सूख गए हैं, उनकी गन्दगी साफ कर उन्हें पुनर्जीवित किया जाए। वर्षा जल द्वारा पुनर्भरण करके भी कुओं के जल स्तर को बढ़ाया जा सकता है। सामान्यत: इसके लिए कुएं से 3 मीटर की दूरी पर जमीन में 3 मीटर चौड़ा व लम्बा तथा 3 मीटर गहरा गड्ढा खोदकर इसमें पहले बोल्डर, उसके ऊपर बजरी, फिर रेत की परतें जमाई जाती है। इस फिल्टर गड्ढे का निचला हिस्सा एक पाइप द्वारा कुएं में डाल दिया जाता है। वर्षा का जल गड्ढे से छन-छन कर पाइप में जाता है और पाइप से पानी कुएं में गिरता है। इससे कुएं और उसके आस-पास के कुओं एवं नलकूपों का जल स्तर बढ़ जाता है। कुओं का पुनर्भरण करते समय यह अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि गन्दे नाले-नालियों, लोगों का अपशिष्ट जल तथा अत्यधिक रासायनिक खेती वाले क्षेत्र से प्रभावित जल का उपयोग इस पुनर्भरण के कार्य में नहीं किया जाए, क्योंकि इससे कुएं के जल के प्रदूषित हो जाने का खतरा उत्पन्न हो सकता है।

- **पानी के बहाव में अवरोध उत्पन्न करना (Generating barrier in Stream of Water)**

वर्षा का पानी धरती की सतह पर तेजी से बहता हुआ निकल जाता है। पानी के बहाव के रास्ते में रूकावट डालकर उसकी गति को धीमा कर तथा बहाव मार्ग में जमीन के अंदर गड्ढा बनाकर उसमें गिट्टी, रेती, ईंट तथा बजरी आदि डालकर जमीन के अंदर पानी के पुनर्भरण को बढ़ाया जा सकता है। तेज ढलानों पर जहां पानी तेजी बहता है, वहां ढलान से समकोण की दिशा में नाली बनाकर तथा पत्थर की 2 लाइनें डालकर पानी की गति धीमी की जाती है। इससे पानी को जमीन के अन्दर उतरने के लिए अधिक समय मिलता है।

जमीन की खुली सतह पर पानी तेज गति से बहता है, परन्तु यदि उस पर कोई भी वनस्पति विशेषकर घास हो, तो पानी बहाव की गति अपने आप धीमी हो जाती है। इससे पानी को जमीन के अन्दर उतरने में मदद मिलेगी, साथ-साथ इसकी व्यवस्थित कटाई से पशुओं के लिए चारा भी मिलेगा। यहां यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि घास लगाने के बाद वहां पशुओं को चरने देने के बजाय घास को काटकर खिलाया जाए।

- **भूमिगत जल का विवेकपूर्ण उपयोग (Rational Use of Underground Water)**

पृथ्वी पर अधिंकाश जल की आपूर्ति भूमिगत जल द्वारा ही होती है। अत: इसका विवेकपूर्ण उपयोग वर्षा के जल की कमी को पूरा कर सकता है। विश्व के अधिकतर भागों में भूमिगत जल का प्रयोग सिंचाई के रूप में किया जाता है। भूमिगत जल का विवेकपूर्ण उपयोग तब माना जाता है, जब एक ओर उसका समूचित दोहन किया जाए तो वहीं दूसरी तरफ वर्षा के जल को भूमि के अंदर जाने को बाध्य किया जाए। इसके लिए सतह पर अधिक-से-अधिक पौधारोपण किया जाना चाहिए।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

- **जल को प्रदूषण से बचाना (Protection of Water from pollution)**

जल को सर्वाधिक खतरा प्रदूषण से है। मानव ने जल के अनेक स्रोतों को प्रदूषित करने में प्रबल भूमिका अदा की है। समुद्रों में तेल टैंकरों से होने वाले रिसाव, विषैले पदार्थों के विसर्जन, बमों के परीक्षण, घरेलू व औद्योगिक कचरे के निस्तारण आदि से जल प्रदूषण की स्थिति दिनोदिन भयंकर होती जा रही है। जल प्रदूषण की स्थिति सघन जनसंख्या वाले क्षेत्रों में भयावह है। अत: यह प्रयास करना चाहिए कि स्वच्छ जल में विषैले पदार्थों को विसर्जित न किया जाए। इसके लिए कड़े कानून बनाकर उन पर अमल किया जाना चाहिए। अनेक देशों के जल-विधान में यह प्रावधान तो किया गया है कि जल को प्रदूषित करने वाले को दंड दिया जाए, परन्तु उसका कड़ाई से पालन नहीं किया जाता। भारत ऐसे ही देशों में से एक है।

- **कृत्रिम वर्षा (Artificial Rainfall)**

कृत्रिम वर्षा द्वारा भी जल का संरक्षण किया जा सकता है, परंतु इसकी तकनीक भारत जैसे विकासशील देशों के लिए अमितव्ययी है। कृत्रिम वर्षा में वायुमंडल में सिल्वर आयोडाइड के कण बिखेरने पड़ते हैं, जो संघनित नाभिको को एकीकृत करने में मदद करते हैं। इससे वर्षा में सहायता मिलती है। संयुक्त राज्य अमेरिका में कोलोरेडो पठार पर इस प्रकार की वर्षा के प्रयास किए गए हैं।

- **बांधों व जलाशयों का निर्माण (Construction of Dams and Water-Reserviors)**

बड़ी-बड़ी नदियों के ऊपर बांध व जलाशय बनाकर जल का संरक्षण तो किया गया है, परन्तु अभी अनेक छोटी-छोटी नदियां हैं, जिन पर और अधिक बांध बनाकर इस दिशा में कार्य करने की आवश्यकता है। बांधों के बनने से कई लाभ होते हैं -

1) जल का संरक्षण होता है।
2) जल विद्युत का निर्माण किया जा सकता है।
3) मत्स्य पालन को प्रोत्साहन मिलता है।
4) सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो जाती है।
5) बाढ़ों की रोकथाम होती है।
6) ग्रीष्मकाल में पेयजल की पूर्ति नियमित बनाए रखने में मदद मिलती है।

जल का अधिकाधिक उपयोग करने में बांध व जलाशय मदद करते हैं। पहाड़ी भागों में छोटे-छोटे बांध बनाकर, पौधारोपण तथा मैदानी भागों में बड़े-बड़े जलाशय तथा नदी-नहर ग्रिड स्थापित करके जल का अधिकाधिक उपयोग संभव हो सकता है।

- **निर्लवणीकरण (Desalinisation)**

समुद्रों में एकत्रित विशाल जलराशि में लवण पाए जाते हैं, उसे निर्लवणीकृत करके विभिन्न कार्यों में प्रयोग किया जा सकता है। इजरायल ने अपने यहां के मरूस्थली भू-भाग में निर्लवणीकरण जल से सिंचाई की है। इससे किबुत्ज फार्मिंग में पर्याप्त प्रगति हुई है।

- **जन-चेतना (Public Awareness)**

जल-संरक्षण के क्षेत्र में आम जनता में चेतना जागरूक करना भी आवश्यक है। चीनी कहावत है कि "जल व शब्द उड़ेलना आसान है, परन्तु उनका पुनर्ग्रहण असंभव है।" अत: हमें दिन प्रतिदिन जीवन में जल के उपयोग में सावधानी बरतनी चाहिए। कई सन्दर्भ में हम प्रतिदिन 5-10 लीटर प्रयोज्य जल बरबाद कर देते हैं।

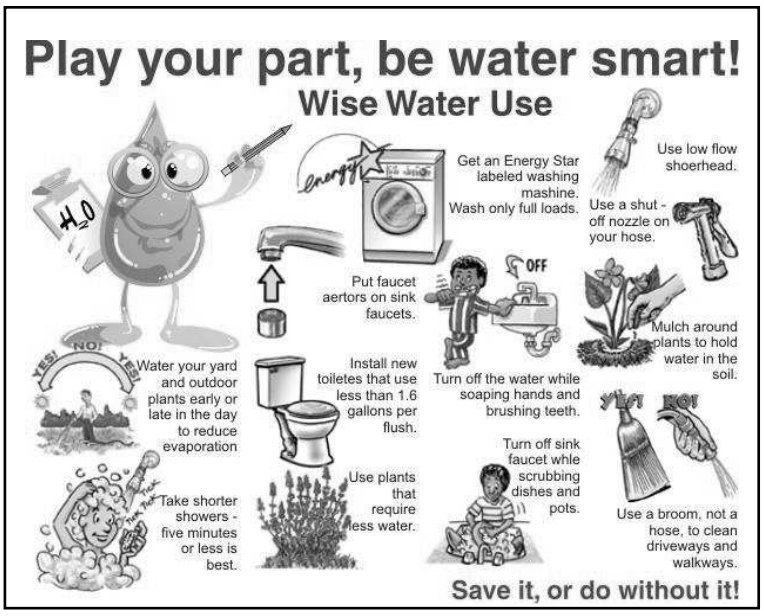

- **जल का परीक्षण (Testing of Water)**

घरों में आपूर्ति किए जाने वाले पेयजल का परीक्षण करते रहना चाहिए। सिंचाई में प्रयोग किए जाने वाले जल की भी जांच होनी चाहिए। इससे मृदा प्रदूषण को नियंत्रित करने में भी मदद मिलती है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

- **अशुद्ध जल का शुद्धीकरण (Purification of Impure Water)**

जिन-जिन भागों में अशुद्ध जल पाया जाता है, वहां उसका उपयोग शुद्धीकरण के पश्चात् ही किया जाना श्रेयस्कर होता है। अशुद्ध जल को शोधित करने की कई विधियां हैं। यदि अपशिष्ट पदार्थयुक्त जल को नदी के स्वच्छ जल में मिलाने से पूर्व ही शोधित कर लिया जाए तो नदी के जल को प्रदूषित होने से बचाया जा सकता है। जब नदी के जल में हानिकारक पदार्थों की मात्रा निश्चित मानक से अधिक बढ़ जाती है तो नदी के अंदर रहने वाले जीवों को ऑक्सीजन की कमी महसूस होने लगती है। इस विशेषता को जैविकीय ऑक्सीजन मांग BOD कहते हैं। BOD की कमी से जलीय जीव मरकर जल को और अधिक प्रदूषित कर देते हैं।

- **जलशोधन की प्रौद्योगिकी में सुधार (Improvement in Technology of Water Purification)**

अपशिष्ट जल के शोधन की प्राविधिकी में नवीनतम सुधार करते रहना चाहिए। जल में घुले अपशिष्ट पदार्थों की मात्रा घटती-बढ़ती रहती है। जब नदी या सागरों के जल की स्वयं शुद्धीकरण क्षमता घट जाती है, तो प्रदूषक तत्वों का अंश इतना अधिक हो जाता है कि उस जल में न तो जलीय जीव ही जिंदा रहते है और न ही उस जल का उपयोग सिंचाई आदि कार्य में हो सकता है। अत: उसका उपचार आवश्यक है। जल उपचार की नवीनतम तकनीकों का सहारा लेने के उपरान्त भी 80-95 प्रतिशत तक जल ही शुद्ध हो पाता है तथा उसमें 5 से 20 प्रतिशत तक अशुद्धियां बनी रहती हैं।

- **वैधानिक नियंत्रण (Leagel Controls)**

जल संरक्षण के लिए वैधानिक प्रतिबंधों को भी लागू किया जाना चाहिए। औद्योगिक प्रतिष्ठान, नगर-निगम या अन्य संस्थान जो स्वच्छ जल में प्रदूषक तत्वों को विसर्जन करते हैं, उन पर प्रतिबंध लगाने के लिए कड़े नियम व कानून बनाए जाए तथा जल के दुरूपयोग को रोकने के लिए व्यापक नियम बनाए जाए। मात्र विधान या नियम बनाने से ही जल संरक्षण नहीं होगा, उन नियमों का कड़ाई से पालन कराने की भी समुचित व्यवस्था करनी चाहिए।

❐ जल संरक्षण हेतु तकनीकें (Techniques for Water Conservation)

वर्तमान में जब जलसंकट ने एक विशाल रूप धारण कर लिया है जिससे जल के संरक्षण की आवश्यकता अधिक महसूस की जाने लगी है। इसी के मद्देनजर विभिन्न तकनीकें उपयोग में लाई जा रही हैं। वर्षा जल खेती तथा जल सम्भर प्रबंध इनमें प्रमुख है -

- **वर्षा जल संग्रहण हेतु अपनाई जाने वाली तकनीकें (The Techniques that uses for Rain Water Collection)**

मकानों की छतों पर गिरने वाली जल धारा (वर्षा) को इकट्ठा करके उसे पुन: भूजल-स्रोत से जोड़ना ही वर्षा जल का संरक्षण कहलाता है। इसकी कई विधियां ज्ञात हैं या प्रचलन में है। छत पर एकत्रित जल को निम्नलिखित साधनों द्वारा भू-जल में पुन: भेजा जा सकता है -

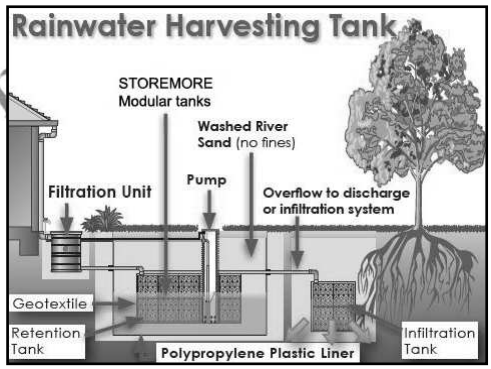

1) **वर्षा जल संचयन (Rain Water Harvesting)** - यह वर्षा जल के संरक्षण की आधुनिक तकनीक है। यह तकनीक वर्षा के जल को संरक्षित कर भू-जल स्तर में सुधार हेतु अत्यन्त उपयोगी मानी जाती है। इस तकनीकी के अन्तर्गत घरों के पतनालों द्वारा निकलने वाला वर्षा का जल एक जगह एकत्र कर जमीन के अंदर पहुंचाया जाता है। इस कार्य के लिए जमीनी सतह के नीचे 6 या 7 फुट गहरी खुदाई की जाती है, जिसे ट्रेंच कहा जाता है। इस ट्रेंच में पाइप के सहारे एकत्रित पानी को पहुंचाया जाता है। ट्रेंच में एक जाली लगाई जाती है तथा रेत और पत्थरों के टुकड़े भरे जाते हैं, जिससे जल में यदि कोई अशुद्धि रहे, तो वह हट जाए तथा इस प्रकार भूमि के अंदर स्वच्छ जल का संग्रहण हो सके।

2) **उपयोगी/अनुपयोगी हैण्डपम्प** - उपयोगी अथवा बेकार पड़े हुए पम्प को वर्षा जल संरक्षण हेतु अथवा जल संवर्धन के लिए किया जा सकता है। इस विधि के अन्तर्गत वर्षा के एकत्रित जल को लगभग 50 से 100 मिमी व्यास वाले पाइप द्वारा हैण्डपम्प में डाल दिया जाता है। संवर्धित जल में प्रदूषण या अवांछनीय तत्वों के प्रवेश को रोकने के लिए पाइप के बाहर 1.2 मीटर लंबाई की गिट्टीयुक्त बालू से निर्मित फिल्टर (छन्नी) लगा दिया जाता है। इस प्रकार एकत्रित जल का उपयोग उपयुक्त प्रकार से क्लोरीनेशन के पश्चात् ही किया जाना चाहिए।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

3) **अनुपयोगी कुएं** - अनुपयोगी कुएं को वर्षा जल संवर्द्धन हेतु स्रोत के रूप में उपयोग किया जा सकता है। एकत्रित वर्षा जल भवन के छत के पाइप द्वारा इन कुओं से पूर्व उसकी सफाई एवं गहरीकरण आदि कर लिया जाना चाहिए। इन कुओं में एकत्रित इस जल में जैविक प्रदूषण रोकने के लिए नियमित क्लोरीनेशन किया जाना चाहिए।

4) **रिचार्ज पिट (गड्ढा)** - रिचार्ज पिट कम से कम गहरे एकीकरण (भू-गर्भीय जल संग्रह सतह)) को रिचार्ज करने के काम आता है। ये पिट 1-2 मीटर चौड़े व 2-3 मीटर गहरे बनाए जाते हैं। इप पिट्स को रेत एवं बोल्डर से भरा जाता है तथा इनकी नियमित सफाई की जाती है। इस पिट्स की आकृति गोलाकार, वर्गाकार या आयताकार हो सकती है।

5) **रिचार्ज शॉफ्ट** - रिचार्ज शॉफ्ट बनाने हेतु डायरेक्ट रोटरी विधि का प्रयोग किया जाता है। इस विधि में प्रयुक्त पाइप का व्यास 0.5 मीटर अथवा रिचार्ज करने हेतु जल की उपलब्धता पर निर्भर करता है। रिचार्ज शॉफ्ट में बोल्डर्स, ग्रेवल्स और मोटी रेत भरी जाती है तथा इसकी निचले सतह पर पारगम्य सतह होनी चाहिए। इसकी गहराई भूतल के नीचे लगभग 10-15 मीटर होनी चाहिए। इसका निर्माण इमारतों से लगभग 10-15 मीटर की दूरी पर करना ही उपयुक्त होता है।

6) **रिचार्ज ट्रैन्च (नाली)** - वर्षा के एकत्रित जल को छत से नीचे नाली में उतारा जाता है, यह नाली बोल्डर्स व रेत द्वारा निर्मित की जाती है तथा इसे धरातल के ढलान के लंबवत् बनाई जाती है। इन नालियों की नियमित सफाई की जानी चाहिए।

7) **पाइप कॉलम स्तम्भ द्वारा जल का रिसाव** -ट्यूबवेल के पास, पार्किंग क्षेत्र आदि में 20-30 सेमी व्यास का दो-चार मीटर गहराई का गड्ढा बनाया जाता है। यह मिट्टी की प्रकृति के ऊपर भी निर्भर करता है। गोल कॉलम के नीचे के एक तिहाई भाग में बड़े आकार के गिट्टी (4-5) व ऊपरी भाग में बजरी रेत भर दी जाती है। वर्षा का जल, पाइप का कॉलम के माध्यम से निचली सतह में बिना रूकावट के पहुंच जाता है। प्रत्येक ट्यूबवेल के आसपास ऐसी कई पाइप्स बनाएं, परन्तु प्रत्येक पाइप्स के मध्य 2-3 मीटर की दूरी रखना अनिवार्य है। इस विधि से जल रिसने को बढ़ावा मिलने पर नलकूप का जल स्तर बढ़ना संभव है।

- **जल संग्रहण प्रबंधन (Water Shed Management)**

यह भी वर्षा के जल के संग्रहण और संरक्षण का एक तरीका है। जलभारण या वाटरशेड भूमि पर एक जल निकास क्षेत्र है, जो वर्षा के बाद बहने वाले जल को किसी नदी, झील, बड़ी धारा अथवा समुद्र में मिलाता है। यह किसी भी आकार का हो सकता है। इस उपाय के अंतर्गत कृषि भूमि के लिए ही नहीं, अपितु भूमि जल-संरक्षण, अनुपजाऊ एवं बेकार भूमि का विकास, वनरोपण और वर्षाकाल के जल का संचयन कार्य किया जा सकता है।

इस विधि के तहत् एक बड़े क्षेत्र में वर्षा का जल संग्रहण किया जाता है इसके अन्तर्गत वर्षा के जल को छोटे-छोटे तालाबों तथा रोक बांधों की सहायता से रोका जाता है। इस विधि द्वारा वर्षा के जल को नदियों द्वारा समुद्र तक पहुंचाकर बर्बाद होने से रोका जा सकता है। इससे भूमिगत जलस्तर में भी वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त कम वर्षा वाले समय में वर्षा के संरक्षित जल का उपयोग भी किया जा सकता है। इस प्रकार जल सम्भर प्रबंधन भी वर्षा जल संरक्षण की एक महत्वपूर्ण तकनीक है।

वाटरशेड कार्यक्रम को 3 चरणों में क्रियान्वित किया जा सकता है-

➢ **प्रथम चरण**

1) वॉटरशेड कार्यक्रम के लिए भौगोलिक क्षेत्रों का पता लगाना, उनका वर्गीकरण करना और प्राथमिकता निश्चित करना।

2) नवीन तकनीक, जैसे - सुदूर संवेदन द्वारा वॉटरशेड कार्यक्रम का मास्टर प्लान तैयार करना।

3) आधारभूत वैज्ञानिक कार्य जैसे कंपोस्ट का प्रयोग इस कार्यक्रम में सम्मिलित करना।

4) समुचित लाभकारी निवेश का प्रारंभ करना, उदाहरणार्थ - बैलों द्वारा हल खींचना और गाड़ी चलाना।

5) वॉटरशेड संबंधी समस्त आंकड़ों को आम आदमी की पहुंच तक लाना।

6) वॉटरशेड कार्यक्रम के प्रसार के लिए समुचित प्रशिक्षण प्रदान करना और जन-संचार माध्यम, जैसे - समाचार-पत्र, आकाशवाणी और दूरदर्शन द्वारा वाटरशेड कार्यक्रम के जन-जागरूकता अभियान को बढ़ाना।

➢ **द्वितीय चरण**

1) वॉटरशेड कार्यक्रम में समुचित ग्रामीण प्रौद्योगिक-प्रणाली को अपनाना।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

2) ऊपरी प्रदेशों और क्षेत्रों में वाटरशेड प्रबंधन करना।

3) निचले क्षेत्रों एवं तटीय प्रदेशों में इस कार्यक्रम को संचालित करना।

4) क्षेत्रीय स्तर पर डाटा बैंक स्थापित करना।

5) सक्षम कृषि-औद्योगिक आधारभूत ढांचे का निर्माण करने का प्रयास, जिसमें बिजली आपूर्ति और उन्नत बीज शामिल हैं।

6) वॉटरशेड प्रबंधन के निर्माणक पहलू, जैसे - खाइयों की लम्बाई और चौड़ाई के बीच का अंतर पर अनुसंधान।

7) वॉटरशेड कार्यक्रम पर एक साथ कानून बनाना और उन्हें लागू करना।

➢ **तृतीय चरण**

1) वॉटरशेड कार्यक्रम में स्थानीय लोगों को शामिल करना।

2) प्रत्येक वॉटरशेड कार्यक्रम में तकनीकी इकाइयों को शामिल करना।

3) वॉटरशेड कार्यक्रम में उपयुक्त प्रौद्योगिकी तथा स्वस्थ पर्यावरण को प्राथमिकता देना।

4) वॉटरशेड कार्यक्रम का केंद्रीकरण करने के लिए एक प्राकृतिक संसाधन मंत्रालय का गठन करना।

5) क्षेत्र के लोगों को पिछड़ेपन, सामाजिक अवरोधों तथा धार्मिक अनुकरण से बचाना।

- **जल-भारण (वॉटरशेड) प्रबंधन के उद्देश्य**

1) वॉटरशेड प्रबंधन द्वारा प्राकृतिक संसाधनों जैसे भूमि, जल और कृषि-संपदा का संरक्षण और विकास किया जा सकता है।

2) वॉटरशेड प्रबंधन द्वारा भूमि पर बहने वाले वर्षाजल को रोकने की क्षमता बढ़ाई जा सकती है। कृषि उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है।

3) वॉटरशेड प्रबंधन द्वारा वर्षाजल का संचयन करके जल पुनर्भरण का कार्य किया जा सकता है।

4) वॉटरशेड प्रबंधन द्वारा वर्षाजल का संचयन करके वृक्ष, फसलें और घास उगाई जा सकती है।

5) वॉटरशेड प्रबंधन द्वारा ग्रामीण मानवशक्ति और जल ऊर्जा-प्रणाली को विकसित किया जा सकता है।

6) वॉटरशेड प्रबंधन द्वारा मानव समुदाय की सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सुधार किया जा सकता है।

- **समेकित वॉटरशेड प्रबंधन कार्यक्रम (Integrated Watershed Management Programme - IWMP)**

यह नदी बेसिन प्रबंधन की लघु स्तरीय इकाई है। कमान क्षेत्र विकास कार्यक्रम के विकल्प के रूप में इसे देखा गया है। 8वीं पंचवर्षीय योजना में इसकी व्यवस्थित ढंग से शुरुआत की गई। पारिस्थितिक संतुलन के लिए इस कार्यक्रम में भूमि, जल व वनों के समन्वित प्रबंधन की अनिवार्यता पर बल दिया गया। ग्रामीण मंत्रालय व कृषि मंत्रालय के सहयोग से नदी बेसिनों को विभिन्न जल संभरण (वाटरशेड) क्षेत्रों में बांटने व उसके अनुरूप नियोजन करने का फैसला लिया गया। इसे अंत: प्रादेशिक व अन्तरा-प्रादेशिक सामाजिक-आर्थिक विषमताओं को कम करने, ग्रामीण रोजगार सृजन, गरीबी निवारण आदि में कारगर माना गया है।

9वीं पंचवर्षीय योजना में हनुमंत राव समिति व मोहन धारिया समिति की अनुशंसा को आधार बनाते हुए 2 अक्टूबर, 2002 से इस कार्यक्रम को मान्यता दी गई। इसकी सफलता के लिए इसे पंचायती राजव्यवस्था से जोड़ा गया। 10वीं पंचवर्षीय योजना में 'हरियाली' नामक राष्ट्रीय कार्यक्रम आरम्भ किया गया, जो जल संभरण प्रबंधन से ही संबद्ध है। आंध्र प्रदेश में 'नीरू-मीरू' एवं राजस्थान के अलवर में 'पानी संसद' भी पर्याप्त सफल रहे हैं। वर्तमान समय में नदी बेसिन के लिए औसतन 500 हैक्टेयर क्षेत्र में प्रबंधन की इकाई बनाया गया है। जल संरक्षण, वाटर हार्वेस्टिंग, वानिकी, मत्स्यन, लघु सिंचाई, लघु पेयजल आपूर्ति आदि इसके उद्देश्यों शामिल हैं। जल संभरण क्षेत्रों के चयन के लिए क्षेत्र सर्वेक्षण हेतु सुदूर संवेदन की भी मदद ली जा रही है, ताकि उच्चावच, मृदा, जल संसाधन, भू-उपायों आदि की बेहतर जानकारी मिल सके।

➢ **IWMP की विशेषताएं**

1) राज्य स्तर पर बहु-विषयक विशेषज्ञों सहित समर्पित संस्थानों की स्थापना करना, जैसे - राज्यस्तरीय नोडल एजेंसी, जिला स्तर-वाटरशेड प्रकोष्ठ-सह-डॉटा सेंटर, परियोजना स्तर - परियोजना कार्यान्वयन एजेंसी और ग्राम स्तर - वाटरशेड समिति।

2) परियोजनाओं का चयन और तैयार करने में सामूहिक दृष्टिकोण। परियोजना का औसत आकार-लगभग 5,000 हेक्टेयर।

3) केन्द्र और राज्यों के बीच 90:10 के अनुपात में एक - समान वित्त-पोषण।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

4) मैदानी क्षेत्रों में लागत मानदण्डों को 6,000 रुपए प्रति हेक्टेयर से बढ़ाकर 12,000 रुपए/हेक्टेयर किया गया है, दुर्गम/पहाड़ी क्षेत्रों में यह 15,000 रुपए/हेक्टेयर है।

5) परियोजना अवधि में लचीलापन, अर्थात् - 4 से 7 वर्ष।

6) सूचना प्रौद्योगिकी, दूरसंवेदी तकनीकों, योजना और निगरानी एवं मूल्यांकन के लिए जीआईएस सुविधाओं का प्रयोग करके परियोजनाओं के शुरू में की वैज्ञानिक योजना बनाना।

7) डीपीआर तैयार करने के लिए परियोजना निधियों का निर्धारण करना।

8) वाटरशेड परियोजनाओं के अन्तर्गत परियोजना निधियों के निर्धारण सहित नए आजीविका घटक को लागू करना, अर्थात् - बिना परिसंपत्ति वाले लोगों की आजीविका के लिए परियोजना निधि का 9 प्रतिशत तथा उत्पादक प्रणाली और सूक्ष्म उद्यमों के लिए 10 प्रतिशत निर्धारित करना।

9) राज्यों को परियोजनाओं की संस्वीकृत शक्तियों का प्रत्यायोजन करना।

- **नीराचंल : राष्ट्रीय जल** सम्भर **प्रबन्धन परियोजना**

7 अक्टूबर, 2015 को विश्व बैंक की सहायता प्राप्त 'राष्ट्रीय जल सम्भर प्रबंधन परियोजना-नीराचंल' को 2,142.30 करोड़ रुपए (357 मिलियन डॉलर) के परिव्यय के साथ स्वीकृति प्रदान की गई। प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना के जल सम्भर घटक के लिए 'नीरांचल' परियोजना पूर्ववर्ती एकीकृत जल सम्भर प्रबंधन कार्यक्रम के स्थान पर लाई गई है। यह परियोजना राष्ट्रीय स्तर के साथ-साथ नौ राज्यों - आन्ध्र प्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात, झारखण्ड, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, ओडिशा, राजस्थान और तेलंगाना में क्रियान्वित की जाएगी। इस परियोजना की 2142.30 करोड़ रुपए की कुल लागत में सरकार का हिस्सा 50 प्रतिशत होगा, जबकि शेष राशि विश्व बैंक से ऋण घटक के रूप में प्राप्त होगी।

इससे भारत में जल सम्भर और वर्षा सिंचित कृषि क्षेत्र प्रबंधन के तौर-तरीकों में संस्थागत बदलाव आएंगे। इससे ऐसी विशेष प्रणालियां सृजित की जा सकेंगी, जो जलसंभर कार्यक्रमों तथा वर्षा सिंचित सिंचाई प्रबंधन के तौर-तरीकों को और बेहतर केन्द्रित एवं अधिक समन्वित कर मापन योग्य परिणाम उपलब्ध कराने में सहायक सिद्ध होगी।

- **निष्कर्ष**

वॉटरशेड प्रबंधन योजनाओं द्वारा ही भारत जैसे विशाल जनसंख्या वाले देश की जनता के लिए भविष्य की भोजन की मांग को पूरा किया जा सकेगा। यह कार्यक्रम मनुष्य को जल के कारण उत्पन्न खतरों, रोग और दोषपूर्ण जल पीने के दुष्प्रभाव से बचाता है। वाटरशेड कार्यक्रम द्वारा हरियाली और वन-क्षेत्र को बढ़ाया जा सकता है, जो भविष्य के पर्यावरणीय संतुलन के लिए भी आवश्यक है।

सिंचाई (Irrigation)

भूमि में कृत्रिम विधि से जल देने कि क्रिया को, जिससे भूमि में नमी की उचित मात्रा बरकरार रहे और पौधों की उचित वृद्धि हो, सिंचाई कहते हैं। अर्थात पौधे पानी की मात्रा को कृत्रिम साधनों द्वारा पूरा करते हैं, उसे सिंचाई कहते हैं। पौधे पोषक तत्व जड़ों द्वारा पानी के घोल के रूप में प्राप्त करते हैं। इनके लिए भूमि के अंदर पानी की उचित मात्रा का होना आवश्यक है। पानी की यह मात्रा वर्षा जल या कृत्रिम जल से पूरी होती है।

❐ सिंचाई की आवश्यकता (Need of Irrigation)

भारत का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 32,87,263 वर्ग किमी है, जिसमें से 160 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र पर खेती की जाती है तथा इस कृषिगत क्षेत्रफल का लगभग 35 प्रतिशत भाग ही सिंचित है। भारत में अधिकतर खेती मानसूनी वर्षा पर निर्भर है। भारत में सिंचाई का मुख्य स्रोत वर्षा जल है। भारत में औसत वार्षिक वर्षा 112 सेमी है तथा देशभर में यह वर्षा असमान होती है। भारत में सबसे अधिक वर्षा चेरापूंजी में तथा सबसे कम वर्षा लेह-लद्दाख तथा जैसलमेर में होती है। अत: वर्षा के इस असमान वितरण के कारण सिंचाई की आवश्यकता महसूस की जाती है। सिंचाई की आवश्यकता निम्नलिखित कारणों से पड़ती है -

1) **वर्षा का एकसमान वितरण न होना** - देशभर में होने वाली वर्षा में काफी असमानता है, कहीं 200 सेमी से भी अधिक वर्षा होती है, तो कहीं 50 सेमी से भी कम वर्षा होती है। ऐसी स्थिति में सिंचाई का प्रबंध करना अत्यन्त होता है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

2) **वर्षा की अनियमितता** - हमारे देश में अनियमित रूप से वर्षा होती है। यदि नियमित रूप से वर्षा होती है तो फसलें अच्छी उगाई जा सकती है। देश के अनेक भागों में वर्षा कभी 10-15 जून से तो कभी जुलाई के अन्त तक भी वर्षा नहीं होती है। अत: खरीफ की फसलों की बुआई समय पर नहीं हो पाती है।

3) **कम वर्षा का होना** - कभी-कभी प्राकृतिक वर्षा काफी कम होती है, अत: जल की मांग को पूरा करने के लिए कृत्रिम सिंचाई की आवश्यकता होती है। फसलों को नष्ट होने से बचाने के लिए सिंचाई आवश्यक है।

4) **अधिक पानी चाहने वाली फसलें उगाना** - अधिक पानी चाहने वाली फसलों जैसे- धान, बरसीम, गन्ना आदि को अच्छी तरह उगाने के लिए सिंचाई की आवश्यकता होती है।

5) **मिट्टी में जलधारण शक्ति की कमी** - जब मृदा की जलधारण क्षमता कम होती है, तो वर्षा का अधिकांश जल मिट्टी की सतह से बह जाता है या अन्त:श्रवण या परकोलेशन द्वारा अंदर चला जाता है या वाष्पन द्वारा नष्ट हो जाता है। अत: पानी का भूमि में संचित न होने के कारण शीघ्र सिंचाई की आवश्यकता होती है। ऐसी भूमि रेतीली होती है, अर्थात् - मिट्टी में बड़े कण अधिक तथा छोटे कण कम होते हैं।

6) **शुष्क क्षेत्र** - शुष्क क्षेत्रों में वर्षा कम होती है। ऐसे क्षेत्रों में यदि वर्षा होती भी है, तो कड़ी धूप के कारण जल वाष्पित हो जाता है, जैसे - राजस्थान में। ऐसे क्षेत्रों में भूमिगत जल भी बहुत कम होता है।

7) **सघन कृषि अपनाना** - सघन कृषि या बहुफसली कार्यक्रम अपनाने के लिए सिंचाई की आवश्यकता होती है।

8) **कीमती फसलें उगाना** - कीमती या नगदी फसलें उगाने के लिए कृत्रिम सिंचाई की आवश्यकता होती है, नकदी फसलों में गन्ना, आलू, तिलहन आदि फसलें आती है।

9) **पाले से फसलों की रक्षा के लिए** - सर्दियों में फसलों को पाले से बचाने के लिए सिंचाई का आवश्यकता पड़ती है, जैसे - आलू, मटर आदि फसलें।

10) **खेती में जीवांश पदार्थ सड़ाने के लिए** - भूमि में जीवांश पदार्थ कभी-कभी पानी की कमी से ठीक तरह से सड़ नहीं पाते। अत: सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है।

❐ सिंचाई के लिए पानी के स्रोत (Water Resources for Irrigation)

प्रकृति का प्रमुख जल स्रोत वर्षा का पानी है, जो भूमि पर गिरता है। इसकी कुछ मात्रा जल रिसाव द्वारा भूमि में सोख ली जाती है। इसकी कुछ मात्रा तालाबों, झीलों, नदी, नालों में पहुंचकर समुद्र तक पहुंचती है। भूमि तथा अन्य जल स्रोतों से जल वाष्पीकरण व पौधों द्वारा वाष्पोत्सर्जन के रूप में निरन्तर उड़ता रहता है। यही जलवाष्प के रूप में इकट्ठा होकर, वर्षा के रूप में पृथ्वी पर गिरता है।

भारत में कुल सिंचित क्षेत्रफल का लगभग 40 प्रतिशत भाग सिंचाई के लिए नहरों पर निर्भर रहता है तथा 35 प्रतिशत क्षेत्रफल की कच्चे व पक्के कुओं से सिंचाई की जाती है। शेष 25 प्रतिशत क्षेत्रफल में ट्यूबवेल, झील एवं तालाबों से सिंचाई की जाती है।

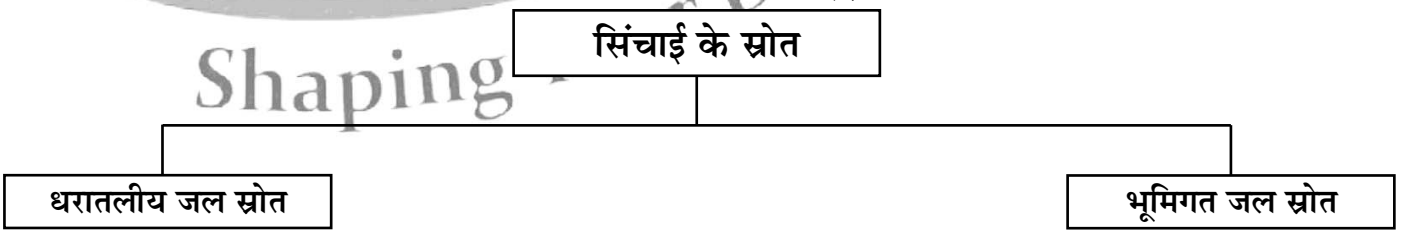

• धरातलीय जल स्रोत (Surface Water Resources)

वर्षा का जल तालाबों, जलशयों तथा झीलों में इकट्ठा हो जाता है या प्राकृतिक रूप से इकट्ठा रहता है, उसे सीधे रूप में जल उठाने वाले यंत्रों का प्रयोग कर सिंचाई के काम में लेते हैं। कृत्रिम रूप में नदियों पर बांध बनाकर या नहरों का निर्माण कर या सीधे ही जल उठाने वाले यंत्र नदियों के किनारे लगाकर सिंचाई के लिए प्रयोग करते हैं।

➢ नहरों द्वारा सिंचाई

नहरों द्वारा सिंचाई हमारे देश में प्राचीन समय से नहरें सिंचाई जल का स्रोत रही हैं। नहरों का निर्माण प्राय: निरन्तर प्रवाहित होने वाली नदियों की जलधारा को रोककर करते हैं तथा यह व्यवस्था खासकर उत्तरभारत में अधिक है, जबकि दक्षिण भारत में अधिकतर नहरें जलाशयों में एकत्रित जल द्वारा संचालित होती हैं। ये 2 प्रकार की होती हैं -

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

1) **मौसमी या बरसाती नहरें** – इन नहरों में पानी वर्षा के बाद ही आता है, जिसका उपयोग रबी की फसल के लिए किया जाता है। ये नहरें गर्मियों में सूख जाती हैं। जुलाई से सितम्बर तक नहरों में पानी रहता है। अत: खरीफ की फसल उगा ली जाती है, जबकि अक्टूबर से जून तक नहरें खाली पड़ी रहती हैं। अत: रबी मौसम में खेत खाली रह जाता है।

2) **बारहमासी या नित्यवाही नहरें** – जिन नहरों में बारह महीने या वर्षभर पानी भरा रहता है, नित्यावाही नहरें कहलाती हैं। उत्तर प्रदेश में अधिकतर नहरें इसी प्रकार की पाई जाती हैं।

❖ **नहरों द्वारा सिंचाई के लाभ**

नहरों द्वारा सिंचाई के निम्नलिखित लाभ प्राप्त होते हैं –

1) नहरों से सिंचाई करना सस्ता पड़ता है।

2) नहरों के पानी के साथ उर्वरा मिट्टी व पोषक तत्व खेत में पहुंचते हैं, अत: भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ती है।

3) नहरों से यातायात व संचार सुविधाएं भी प्राप्त होती है।

4) फसलों की उपज में तुलनात्मक वृद्धि होती है।

5) अधिक क्षेत्र में सिंचाई की जा सकती है, साथ ही इसमें समय भी कम लगता है।

6) नहरों द्वारा सिंचित क्षेत्रों में अधिक हरियाली बनी रहती है।

❖ **नहरों द्वारा सिंचाई से हानियां**

नहरों के जल से सिंचाई से निम्नलिखित हानियां होती हैं –

1) खरपतवार व जल निकास जैसी समस्याएं बढ़ जाती हैं।

2) नहरों द्वारा पानी कभी-कभी समय पर नहीं मिल पाता, जिससे फसल के नष्ट होने का भय बना रहता है।

3) भूमि का जल-स्तर ऊंचा हो जाता है।

4) फसलों में आवश्यकता से अधिक पानी देने के कारण फसलों पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

5) अधिक सिंचाई से निचली भूमियों के धरातल पर लवण इकट्ठा होने से भूमि लवणीय बन जाती है।

➢ **तालाबों द्वारा सिंचाई**

1) भारत में तालाबों द्वारा लगभग 15 प्रतिशत भाग की सिंचाई की जाती है।

2) भारत में लगभग 5 लाख बड़े व 50 लाख छोटे तालाब हैं।

3) भारत में सबसे अधिक तालाब दक्षिण भारत में पाए जाते हैं।

4) मुख्यत: दक्षिणी राज्यों व पश्चिमी बंगाल, बिहार, मध्य प्रदेश आदि भागों में तालाबों द्वारा सिंचाई की जाती है।

5) तालाबों में वर्षा ऋतु में अधिक पानी भर जाता है, जिसे आवश्यकतानुसार छोटी जोत के किसान सिंचाई के लिए उपयोग करते हैं।

❖ **तालाबों से सिंचाई करने में हानियां**

1) तालाबों के पानी में प्रतिवर्ष मिट्टी जमने से वे उथले हो जाते है, जिससे सफाई में अधिक खर्च आता है।

2) जिन वर्षों में वर्षा नहीं होती है, उस वर्ष तालाबों में पानी की कमी हो जाती है। अत: सिंचाई नहीं हो पाली।

3) तालाब कृषि योग्य भूमि को घेरते हैं।

4) तालाबों से दूर खेतों तक पानी पहुंचने में बड़ा श्रम, समय व धन खर्च होता है।

➢ **नदियों द्वारा सिंचाई**

बड़ी-बड़ी नदियों से नहरें निकालकर सिंचाई की जाती है, जबकि छोटी नदियों से सीधी सिंचाई की जाती है। इन नदियों के किनारों पर रहट, ढेकली, बेड़ी आदि लगाकर पानी खेतों तक पहुंचाया जाता है।

➢ **झरनों द्वारा सिंचाई**

झरनों का पानी स्वच्छ होता है। इनके द्वारा पहाड़ी क्षेत्रों मे सिंचाई की जाती है। जहां पर खेत सीढ़ीनुमा होते हैं, वहां इससे सुगमतापूर्वक सिंचाई की जा सकती है। झरनों के द्वारा सीमित क्षेत्रों में ही सिंचाई की जा सकती है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

➢ बांध एवं जलाशयों द्वारा सिंचाई

हमारे देश में सिंचाई के साधनों में बांध एंव जलाशयों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। कुल सिंचित क्षेत्र की लगभग 15 प्रतिशत सिंचाइ जलाशयों के द्वारा की जाती है। वर्षा के दिनों में बांध एवं जलाशयों में नदी का पानी रोककर एकत्रित किया जाता है। इससे बिजली पैदा की जाती है तथा नहरों के द्वारा पानी सिंचाई के लिए प्रयोग किया जाता है।

• भूमिगत जल स्रोत (Underground Water Resources)

वर्षा का जल जो भूमि द्वारा सोख लिया जाता है, उसका लगभग 40 प्रतिशत भाग पृथ्वी के धरातल के निचले स्तर तक पहुंच जाता है। यह पानी कुएं खोदकर ही निकाला जाता है। भूमिगत जल के विशाल स्रोत पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल व राजस्थान आदि राज्यों में पाए जाते हैं।

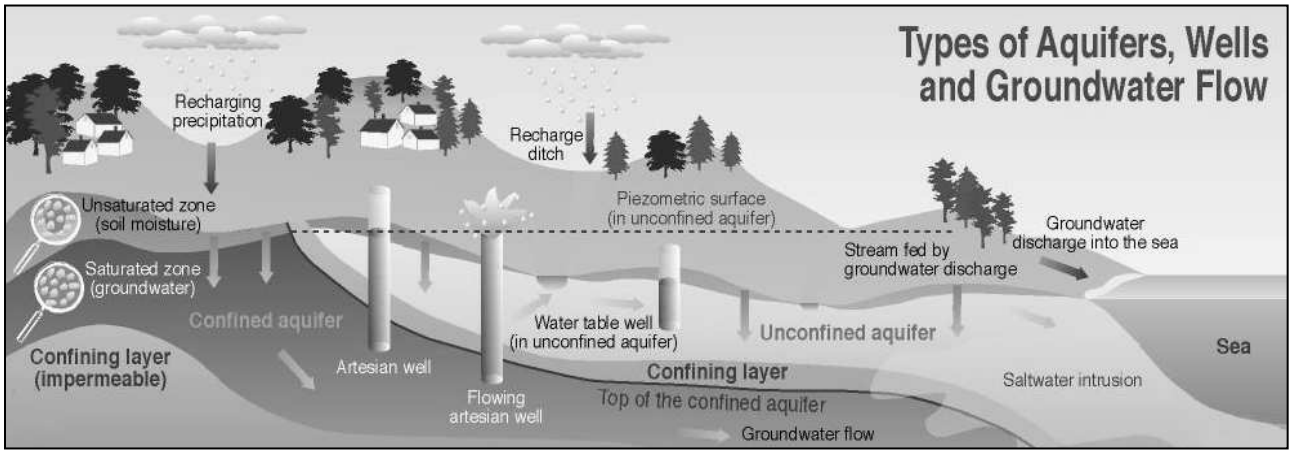

➢ कुएं

भारत में प्राचीन समय से ही कुओं द्वारा सिंचाई की जाती है। इसमें पानी निकालने के लिए चरखा या ढेकली का उपयोग किया जा रहा है। इन कुओं को बनाने में कम धन का व्यय होता है।

1) **कच्चे कुएं** - जिन स्थानों पर जल का तल ऊंचा होता है। वहां इस प्रकार के कुएं बनाए जाते हैं। इसमें पानी निकालने के लिए चरखा या ढेकली का उपयोग किया जा रहा है। इन कुओं को बनाने में कम धन का व्यय होता है।
2) **पक्के कुएं**- ये स्थायी होते हैं, लेकिन इनके निर्माण में अधिक धच खर्च होता है। इससे पानी निकालने में रहट या चरखे का प्रयोग किया जाता है। इन कुओं को अधिक गहरा बनाया जाता है।

❖ कुओं द्वारा सिंचाई से लाभ

1) यह सिंचाई का सस्ता व आसान साधन है।
2) कुएं के पानी से नियंत्रित सिंचाई की जा सकती है, जिससे भूमि बाढ़ ग्रस्त भी नहीं होती है।
3) जल का उपयोग मितव्ययता से किया जाता है।
4) निजी साधन होने से फसल की सिंचाई समय से कर सकते हैं।

❖ कुओं द्वारा सिंचाई से हानियां

1) कुएं बनाने में काफी धनराशि खर्च होती है।
2) सिंचाई करने में अधिक समय लगता है।
3) वर्षा कम होने से कुओं में पानी सुख जाता है।
4) कुओं द्वारा सिंचाई सीमित क्षेत्रों पर होती है।

➢ नलकूप

भूमि में मशीनों के द्वारा बोरिंग करके पम्प द्वारा पानी उठाया जाता है। इसके द्वारा काफी गहराई से पानी निकाला जा सकता है। यह साधन पहले कम, लेकिन आजकल काफी सुविधाजनक व लोकप्रिय हो गए हैं। पम्प से पानी ट्रैक्टर, बिजली की मोटर अथवा डीजल इंजन से निकालते हैं। इसमें पाइपों का व्यास 10-20 सेमी तथा लंबाई 2.5-140 मीटर तक होती है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

❖ **नलकूपों द्वारा सिंचाई के लाभ**

नलकूपों द्वारा सिंचाई के निम्नलिखित लाभ हैं –

1) नलकूपों द्वारा सिंचाई सस्ती पड़ती है।

2) इसके द्वारा समय की बचत होती है।

3) इससे अधिक क्षेत्रफल पर सिंचाई की जा करती है।

4) नकदी फसलें आसानी से उगाई जा सकती हैं।

5) सघन खेती की जा सकती है।

➢ **पातालतोड़ कुएं**

इस प्रकार के कुएं उत्तर प्रदेश के पहाड़ी क्षेत्रों, तराई क्षेत्रों, तमिलनाडु एवं पुदुचेरी में पाए जाते हैं। जहां पर अधो–भूमि तश्तरी के आकार की होती है, वहां पर पानी की नीची सतह पर पानी निकालने के लिए छिद्र बना लिया जाता है, जिससे सिंचाई कर ली जाती है। इस विधि से सिंचाई खर्चीली नहीं पड़ती, क्योंकि पानी बिना शक्ति के ही बाहर निकलता रहता है। इनके प्रयोग से सिंचाई सस्ती पड़ती है तथा पानी निरन्तर निकलता रहता है।

❐ सिंचाई की विधियां (Methods of Irrigation)

सिंचाई की विधियों का चयन, भूमि के गुण, जल की आवश्यकता, सिंचाई के स्रोत का आकार, सिंचाई के जल के गुण तथा मौसम की दशा पर निर्भर करता है।

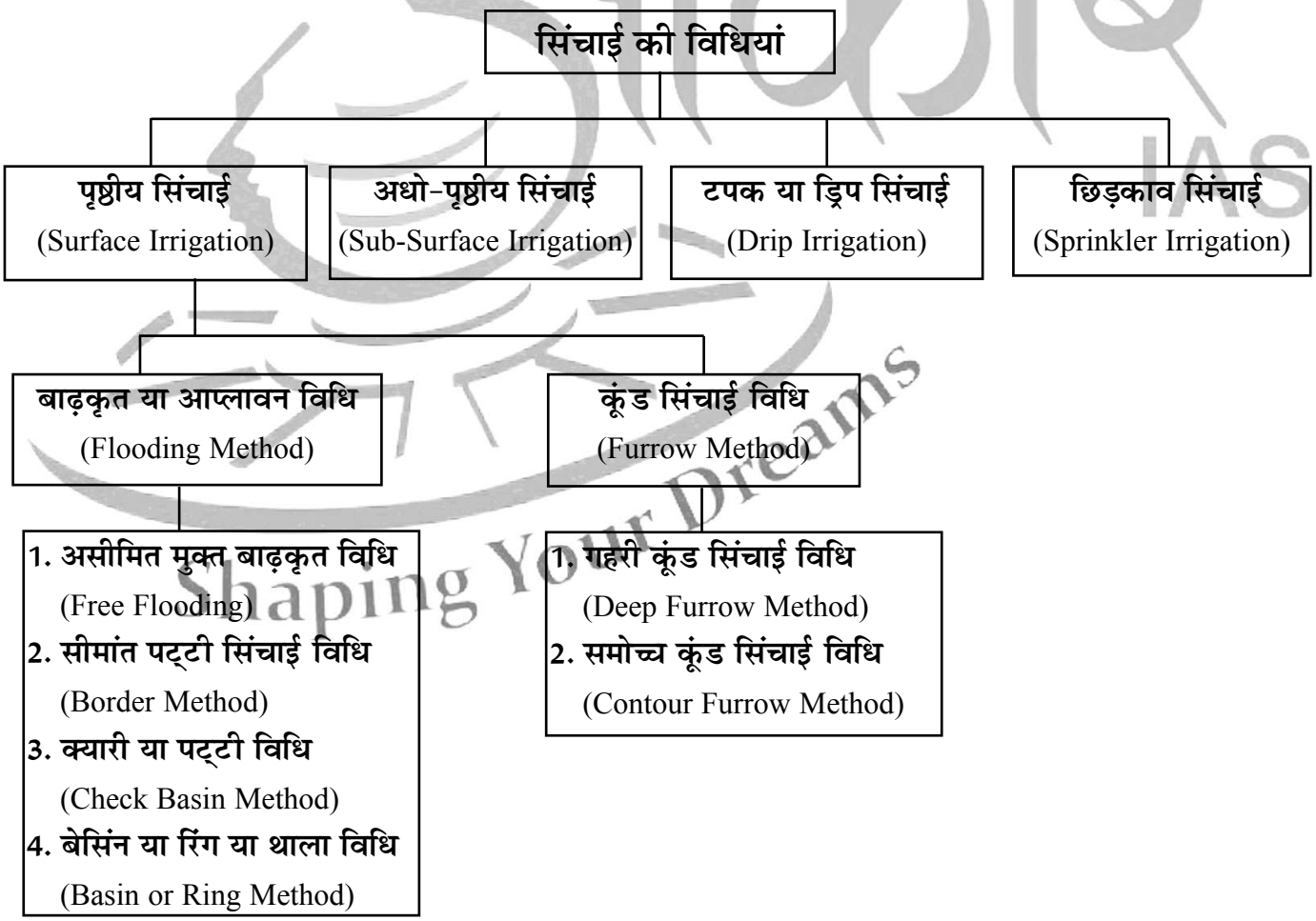

• पृष्ठीय सिंचाई विधि (Surface Irrigation)

यह सिंचाई की सबसे अधिक लोकप्रिय विधि है। हमारे देश में पृष्ठीय विधि द्वारा सिंचाई अधिक की जाती है। इसे निम्नलिखित विधियों में बांटा गया है

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

1) **बाढ़कृत या आप्लावन विधि (Flooding Method)** - इस विधि में पूरे खेत में पानी प्रवाहित करके अप्लावन की स्थिति पैदा की जाती है। इस विधि द्वारा भूमि सतह पर पानी स्वतंत्रता से बहता है। यह कार्य निम्नलिखित चार विधियों द्वारा किया जाता है।

a) **असीमित मुक्त बाढ़कृत (Free Flooding)** - सिंचाई की इस विधि का प्रयोग उन स्थितियों में किया जाता है, जब सिंचाई जल सस्ता हो, भूमि समतल हो तथा जल का प्रवाह अधिक हो। इसके अंदर जल स्रोत बड़ा तथा भूमि की सतह पर पानी अधिक स्वतंत्रता से बहता है।

- यह विधि मुख्यत: धान उगाए जाने वाले तथा नहर से सिंचाई किए जाने वाले क्षेत्रों में प्रचलित है।
- इस विधि से खेत मे पानी बिना मेंड़ बनाए भर दिया जाता है।
- इस विधि से पानी का समान वितरण नहीं हो पाता,कहीं पर अधिक व कहीं पर कम पानी लग जाता है।
- इस विधि में जल उपयोग दक्षता बहुत कम होती है।
- इस विधि से सिंचाई करने से मृदा अपरदन का भय रहता है।

b) **सीमांत पट्टी सिंचाई विधि (Border Method)** - सिंचाई की इस विधि में खेत को काफी लंबी व कम चौड़ी पट्टियों में बांट लिया जाता है।

- इसमें क्यारियों की लंबाई व चौड़ाई प्राय: भूमि की किस्म, भूमि का ढाल, जल स्रोत का आकार, सिंचाई की गहराई, फसल आदि पर निर्भर करती है।
- क्यारियों की चौड़ाई प्राय: 5-6 मीटर रखी जाती है।
- इस विधि में सफलतापूर्वक सिंचाई करने के लिए भूमि को उपयुक्त क्रमिक ढाल दिए जाने के साथ जल प्रवाह को भी नियंत्रित किया जाता है।
- इस विधि से सिंचाई करने पर श्रम पर लागत कम पड़ती है तथा भूमि का दुरूपयोग भी नहीं होता है।
- सिंचाई के छोटे स्रोतों तथा बलुई मिट्टी के लिए यह विधि उपयुक्त नहीं है।

c) **क्यारी या पट्टी विधि (Check Basin Method)** - इस विधि के अंदर खेत को छोटी-छोटी आयताकार क्यारियों में बांट दिया जाता है। प्रत्येक क्यारी सिंचाई की नाली से जुड़ी होती है।

- इस विधि से सिंचाई करने के लिए क्यारियों का आकार, भूमि की किस्म तथा जल प्रवाह पर निर्भर करता है।
- यह विधि गेहूं तथा कपास की फसलों में अपनाई जाती है।
- इस विधि से सिंचाई करने पर जल-उपयोग दक्षता बढ़ जाती है।
- इस विधि का मुख्य दोष यह है, कि सिंचाई के लिए नालियां तथा छोटी-छोटी क्यारियां बनाने में श्रम पर लागत अधिक आती है। साथ ही भूमि का बहुत बड़ा भाग मेंड़ व नालियां बनाने में व्यर्थ हो जाता है।

d) **बेसिन या रिंग या थाला विधि (Basin or Ring Method)** - यह विधि मुख्यत: बगीचों की सिंचाई के लिए अपनाई जाती है। इस विधि में प्रत्येक फल वृक्ष के चारों ओर मिट्टी चढ़ाकर, वर्गाकार रूप में 1 x 3 मीटर तक थाले बनाए जाते हैं। इस विधि से जल-उपयोग दक्षता बढ़ जाती है।

2) **कुंड सिंचाई विधि (Furrow Method)** - कुंड सिंचाई विधि का प्रयोग मेड़ों पर बोई जाने वाली फसलों, जैसे - आलू, गन्ना, चुकन्दर आदि में किया जाता है -

a) **गहरी कुंड सिंचाई विधि (Deep Furrow Method)** - इस विधि में कुंड की लंबाई भूमि की किस्म, ढाल व जल प्रवाह पर निर्भर करती है। कुंड की लंबाई प्राय: 45 से 300 मीटर तक होती है। यह विधि अधिक ढालू भूमियों के लिए उपयुक्त नहीं है।

b) **समोच्च कुंड विधि (Contour Furrow Method)** - यदि भूमि का ढाल 20 प्रतिशत से अधिक हो तो सिंचाई के लिए समोच्च कुंड सिंचाई विधि अपनाई जा सकती है। इस विधि में कुंडों की लंबाई ढाल के लम्बवत् होती है। सिंचाई की मुख्य नाली से पानी प्रत्येक कुंड में खोला जाता है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

- **अधोपृष्ठीय सिंचाई विधि (Sub-Surface Irrigation)**

इस प्रकार की सिंचाई विधि का प्रयोग उन स्थानों पर किया जाता है, जहां भूमि की अधो-सतह सख्त होती है। इस सख्त सतह तक नालियां खोदकर, इनमें कंकड़ पत्थर भरकर ऊपर से ढक देते हैं। इनमें पत्थरों के स्थान पर टाइल्स, छिद्र युक्त लोहा, सीमेंट पाईप आदि का प्रयोग किया जाता है।

इसमें मुख्य नाली का धरातल ऊपर रखा जाता है तथा सहायक नालियां धरातल के नीचे रखी जाती हैं। इसमें मुख्य नाली का संबंध जल स्रोत से कर देते है। इस विधि में पानी अधिक खर्च होता है तथा पानी का ह्रास कम होता है। यह विधि छोटे क्षेत्रों तक ही सीमित है तथा लवणीय मृदाओं में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए।

➢ **अधोपृष्ठीय सिंचाई विधि के लाभ (Advantages of Sub-Surface Irrigation)**

इस विधि के निम्नलिखित लाभ हैं -

1) वाष्पीकरण द्वारा जल ह्रास नहीं होता है।
2) जल उपयोग क्षमता बढ़ती है।
3) समय व श्रम की बचत होती है।
4) मृदा कटाव की संभावना कम होती है।
5) फसल पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।
6) पानी का समान वितरण होता है।
7) भू-परिष्करण क्रियाओं में कोई बाधा नहीं आती है।
8) सिंचाई की नालियां आवश्यकता पड़ने पर जल निकास के प्रयोग में लाई जा सकती है।

➢ **अधोपृष्ठीय सिंचाई विधि से हानियां (Disadvantages of Sub-Surface Irrigation)**

इस विधि के निम्नलिखित हानियां हैं -

1) ढालू क्षेत्रों में उपयुक्त नहीं है।
2) चिकनी भूमियों मे उपयुक्त नहीं है।
3) प्रारंभिक लागत अधिक आती है।
4) साधारण कृषक इसका नहीं अपना सकते।
5) नालियां खराब होने पर इनकी मरम्मत में कठिनाइयां व अधिक व्यय होता है।
6) सिंचाई जल के साथ कीटनाशी व रोगनाशी दवाइयों का प्रयोग नहीं हो सकता है।

- **ड्रिप सिंचाई विधि (Drip Irrigation)**

ड्रिप सिंचाई विधि एक आधुनिक विधि है। यह विधि इजराइल द्वारा विकसित गई है। यह विधि पानी की कमी वाले मरूस्थलीय क्षेत्रों के लिए काफी उपयोगी है। यह विधि काफी महंगी है, लेकिन कम वर्षा वाले क्षेत्रों के लिए उपयोगी है। इस नई विधि में पानी को प्लास्टिक पाइप (PVC Pipe) के द्वारा पानी टपकाने वाले छिद्रों (ड्रिपर्स), जोकि सिंचाई सहायक नलों (Irrigation Laterals) में लगे होते हैं, तक पहुंचाया जाता है। सहायक नल पौधों की पंक्तियों के अगल-बगल में बिछाए जाते हैं। ड्रिपर्स में पानी का दबाव कम करने की व्यवस्था होती है। अत: पानी लगभग शून्य दबाव पर ही बूंदों के रूप में बाहर टपकता है। इसी आधार पर इस विधि का नाम टपकाव सिंचाई रखा गया है। इस विधि द्वारा उर्वरक का घोल भी साथ-साथ दिया जा सकता है।

ड्रिप सिंचाई विधि (Drip Irrigation)

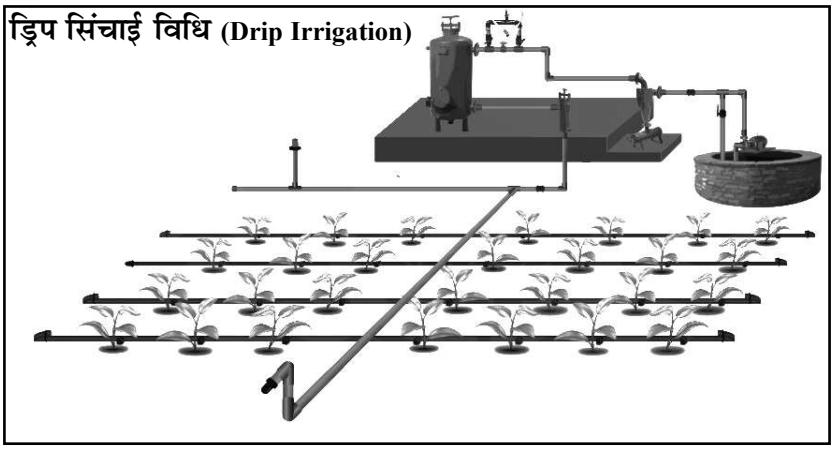

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

प्राथमिक रूप से ड्रिप विधि कुंड सिंचाई विधि से समानता रखती है, परन्तु ड्रिप सिंचाई में पानी को प्लास्टिक पाइप (PVC Pipe) के बिछाए गए जाल में से प्रवाहित करने के कारण कुंड विधि की सभी त्रुटियां समाप्त हो जाती हैं। इस विधि द्वारा पानी का ह्रास कम-से-कम होता है। टपकाव सिंचाई का उद्देश्य पौधों की जड़ों के क्षेत्र में उतना ही जल प्रवाहित करना होताा है, जितना पौधों को प्रतिदिन आवश्यक होता है।

❖ **ड्रिप सिंचाई विधि के लाभ (Advantages of Sub-Surface Irrigation)**

इसके निम्नलिखित लाभ हैं -

1) सभी पौधों को पानी समान रूप से मिलता है।
2) सिंचाई की जल उपयोग क्षमता अधिक है।
3) यह विधि उर्वरक देने के लिए भी उपयोगी है।
4) ढालू भूमियों पर यह विधि काफी कारगर है।
5) सिंचाई करने में श्रम कम लगता है।
6) इस विधि में नालियां, मेड़ आदि बनाने की आवश्यकता नहीं पड़ती।
7) अन्य विधियों की अपेक्षा ड्रिप सिंचाई में 50 प्रतिशत पानी की बचत होती है।

❖ **ड्रिप सिंचाई विधि से हानियां (Disadvantages of Sub-Surface Irrigation)**

इस विधि की निम्नलिखित हानियां हैं-

1) प्रति हेक्टेयर व्यय अधिक होता है।
2) हमारे देश में कोई कंपनी अभी ऐसे उपकरण तैयार नहीं करती।

◆ **बौछारी सिंचाई (Sprinkler Irrigation)**

सिंचाई की यह विधि अधिकतर उन ढालू क्षेत्रों में प्रयोग की जाती है, जहां रेतीली भूमियां अथवा मृदा कटाव अधिक होता है। इस विधि में पानी भूमि की सतह पर बौछार के रूप में वर्षा की तरह गिरता है। इस विधि में रबड़ या लोहे के पाइप जमीन पर बिछा दिए जाते हैं। सहायक पाइप एक-दूसरे से सामानान्तर रखते हुए इनमें आवश्यकतानुसार दूरियों पर नॉजिल लगा देते हैं। तेज हवा चलने पर इस विधि से समान रूप से पानी का वितरण नहीं हो पाता। यद्यपि इस विधि से जल उपयोग क्षमता बढ़ जाती है परंतु इसमें आरंभ में काफी व्यय करना पड़ता है। इस विधि से कभी-कभी लगातार पानी से भीगते रहने वाले पौधों पर रोगों का प्रकोप भी बढ़ जाता है। पौध संरक्षण के लिए कवकनाशी व कीटनाशी रसायनों के छिड़काव के बाद, इस विधि से सिंचाई करने पर दवाओं का घुलकर बह जाने का डर रहता है।

बौछारी सिंचाई (Sprinkler Irrigation)

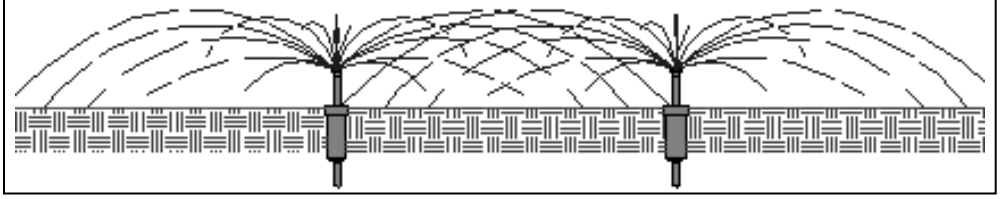

❐ जल निकास (Drainage)

पौधों की वृद्धि एवं विकास के लिए पानी की आवश्यकता पड़ती है और इस पानी की पूर्ति प्राकृतिक रूप से वर्षा तथा कृत्रिम सिंचाई द्वारा की जाती है, लेकिन आवश्यकता से अधिक पानी का खेत में जमा होना भी फसलों के जीवन को नष्ट कर सकता है। इसलिए खेतों में जल भराव की समस्या समाप्त करने के लिए समूचित जल निकास आवश्यक होता है। जल निकास से तात्पर्य फसल की पैदावार बढ़ाने के लिए भूमि की सतह अथवा अधो सतह से अधिक पानी को कृत्रिम रूप से बाहर निकालने से है।

◆ **जल निकास की आवश्यकता (Need of Drainage)**

जल निकास की आवश्यकता निम्नलिखित कारणों से हो सकती है-

1) अधो भूमि में सतह का सख्त होना, जिसके कारण पानी नीचे की सतहों में नहीं पहुंच पाता और ऊपरी सतह पर इकट्ठा हो जाता है।
2) ऐसे क्षेत्रों में जहां पर भूमि जल ऊपरी सतहों में पाया जाता है।
3) चिकनी भूमियों पर पानी एकत्र हो जाता है, क्योंकि ये भूमियां कम मात्रा में पानी सोखती हैं।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

4) नहरी क्षेत्रों में, जहां किनारे वाले खेतों में पानी निस्पन्दन द्वारा एकत्रित हो जाता है।

5) लवणीय भूमियों में लवणों की हटाने के लिए भूमिगत जल निकास की आवश्यकता पड़ती है।

6) तराई क्षेत्रों की दलदली भूमियों में।

7) निचली समतल भूमियों में।

8) वे भूमियां, जिनसे फालतू जल शीघ्रता से नहीं निकाला जा सकता है।

9) अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में।

10) जल क्षरण से प्रभावित भूमियों में भी जल निकास कर आवश्यकता पड़ती है।

- **जल निकास विधियां (Drainage Methods)**

खेतों से जल को निकालने या जल निकास की बेहतर व्यवस्था करने हेतु कई प्रकार की विधियों का प्रयोग किया जाता है, जिन्हें जल निकास प्रणाली कहा जाता है। ये प्रणालियां निम्नलिखित है –

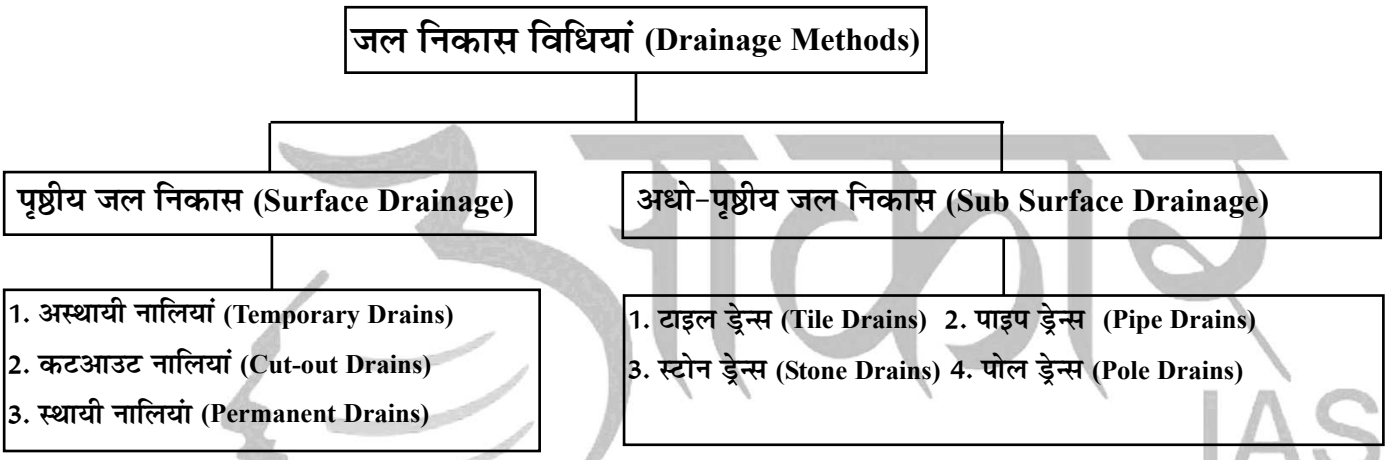

➢ पृष्ठीय जल निकास (Surface Drainage)

इस विधि के अन्तर्गत भूमि की ऊपरी सतह से खुली नालियों द्वारा जल निकास किया जाता है। जल निकास की खुली नालियां काफी सुविधाजनक होती हैं और इनका निर्माण भी भारतीय कृषक के लिए अतिसरल है। इसकी मुख्य विधियां निम्नलिखित हैं –

1) **अस्थायी नालियां (Temporary Drains)** – इस विधि के अंदर खेतों में थोड़ी-थोड़ी दूरी पर 10-15 सेमी गहरी नालियां बना देते हैं व ये नालियां मुख्य नाली में मिला देते हैं। इस प्रकार की नालियां आवश्यकतानुसार नष्ट भी कर देते हैं। इसके अतिरिक्त अधिक वर्षा वाले क्षेत्र में 1-2 मीटर चौड़ी व 0.3-1.0 मीटर धरातल से उठी हुई क्यारियां बनाते हैं। इन क्यारियों में बीचों-बीच में नालियां छोड़ देते हैं। धरातल से उठी क्यारियों में फसल पैदा करते हैं।

2) **कटआउट नालियां (Cut-out Drains)** – जिन क्षेत्रों में नहर खेतों के धरातल से ऊपर रहती है, वहां पर निस्यंदन की क्रिया द्वारा नहर का जल, नहर के किनारे वाले क्षेत्रों में एकत्रित होता रहता है। यह समस्या कहीं-कहीं पर तालाबों के कारण भी उत्पन्न हो सकती है। इस प्रकार की समस्याओं से बचने के लिए नहर एवं खेत के बीच 1.0-1.5 मीटर चौड़ी व 0.8-1.0 मीटर गहरी नालियां खोद देते है। इन नालियों का संबंध निचले नालों से करके जल निकास करते हैं।

3) **स्थायी नालियां (Permanent Drains)** – जिन क्षेत्रों में जल निकास की समस्या अधिक होती है, वहां पर क्षेत्र के निचले स्थान पर स्थायी मुख्य नाली व इनकी सहायक नालियां, जो कि स्थायी होती हैं, बनाई जाती हैं। सहायक नालियां मुख्य नाली में पानी इकट्ठा करती हैं व मुख्य नाली इस पानी को नालों या नदियों में छोड़ देती है।

➢ अधो-पृष्ठीय जल निकास (Sub Surface Drainage)

इस प्रकार के जल निकास के लिए सहायक व मुख्य जल निकास नालियां भूमि के अंदर 3 से 6 फीट की गहराई में तैयार की जाती है। मुख्य जल निकास नाली का धरातल हमेशा सहायक नालियों से नीचे रखा जाता है। इन नालियों का मुख्य उद्देश्य जल निकास के साथ-साथ भूमि में जल-स्तर को नीचा करना भी होता है। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित प्रणालियां शामिल है-

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

1) **टाइल ड्रेन्स (Tile Drains)** - इसे अंदर 10 सेमी व्यास वाले मिट्टी के टाइल जो कि छिद्रयुक्त होते है, उचित गहराई पर दबा देते है। सहायक नालियों के बीच की दूरी 45-75 सेमी तक रखते हैं।

2) **पाइप ड्रेन्स (Pipe Drains)**- इसके अंदर 10 सेमी व्यास के छिद्रयुक्त लोहे या प्लास्टिक के नल सहायक नलियों में दबा देते हैं, जिसका संबंध मुख्य नाली से कर देते हैं।

3) **स्टोन ड्रेन्स (Stone Drains)**- जिन क्षेत्रों में सहायक नाली पत्थर या ईटों की सहायता से बनाई जाती है वहां पर भी सहायक नालियों के बीच 4.5-10.0 मीटर तक रखते हैं। ये नालियां चकोर या 'V' के आकार की बनाते हैं। इन नालियों के अंदर के टुकड़े, बांस के टुकड़े या पत्तियां आदि भर देते हैं और ऊपर से मिट्टी से ढक देते हैं। इसका संबंध भी मुख्य नालियों से कर दिया जाता है। इस प्रकार मिट्टी का फालतू पानी रिस-रिस कर पत्थरों के टुकड़ों के बीच छिद्रों से गुजरता हुआ, सहायक व मुख्य जल-निकास नाली तक पहुंच जाता है। पत्थर से बनी जल निकास नालियों में साधारणतया मिट्टी भर जाती है और ये नालियां अपना कार्य शीध्र बंद कर देती हैं।

4) **पोल ड्रेन्स (Pole Drains)**- जिन क्षेत्रों में लकड़ी आसानी से प्राप्त हो जाती हैं, उन क्षेत्रों में जल निकास नालियां लकड़ी के टुकड़ों से बनाते हैं। इन नालियों का आकार 80 से 90 सेमी चौड़ा रखा जाता है। इन नालियों की बगलों में लकड़ियों के टुकड़े भर दिए जाते हैं। पानी रिस-रिस कर सहायक नालियो से होता हुआ, मुख्य जल निकास नाली तक पहुंच जाता है। लकड़ी के टुकड़े अधिकतर गीले रहने के कारण गल सड़ जाते हैं व नालियों में मिट्टी भर जाती है, अतः बार-बार श्रम, समय व धन की हानि होती है।

❖ **जल निकास से लाभ (Advantages of Drainage)**

जल निकास के लाभ निम्नलिखित हैं -

1) जल द्वारा मृदा कटाव कम हो जाता है तथा मृदा संरचना में सुधार होता है।
2) हानिकारक लवण भूमि की ऊपरी सतह पर एकत्रित नहीं हो पाते हैं।
3) भूमि का वायु-संचार बढ़ता है, फलस्वरूप भूमि में ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ जाती है।
4) जल निकास द्वारा,अगली फसल के लिए खेत की तैयार व बुआई समय पर हो जाती है।
5) भूमि दलदली होने से बच जाती है।
6) उपयुक्त जल निकास होने से सूक्ष्म जीवों की क्रियाशीलता भी बढ़ती है।
7) जल निकास की उपयुक्त सुविधा होने पर पौधों के खाद्य तत्वों का भूमि में निक्षालन कम होता है।
8) यदि उचित जल निकास का प्रबंध न हो तो, भूमि में CO_2 की सान्द्रता बढ़ जाती है और यह पानी के साथ क्रिया करके कार्बनिक अम्ल बनाती है, जिससे मृदा अम्लीय हो जाती है।
9) अच्छे जल निकास से फसलों को विभिन्न रोगों एवं कीटो से बचाय जा सकता है।
10) मृदा ताप उपयुक्त बना रहता है, जिससे बीजों का अंकुरण शीघ्रता से होता है।

❖ **जल निकास नहाने से हानियां (Disadvantages of Drainage)**

जल निकास से होने वाली निम्नलिखित हैं -

1) **मृदा वायु संचार में कमी** - भूमि की किस्मों के अनुसार, मृदा में 30-60 प्रतिशत रन्ध्रावकाश होता है, जिनमें पानी भरने से हवा बाहर निकल जाती है। जिससे पौधों की जड़ों को श्वसन में कठिनाइयां आती हैं और फसल नष्ट हो सकती है।

2) **मृदा ताप का गिरना**- भूमि में अधिक पानी भरने से मृदा ताप गिरता है, जिससे बीजों के अंकुरण में बाधा आएंगी तथा फसलों के विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

3) **जड़ों का उथला रह जाना**- पौधों की जड़ों को ऊपरी सतह पर ही जल मिल जाने से वे उथली रह जाती हैं, जिससे वे केवल भूमि की ऊपरी सतह से ही तत्व/खाद्य तत्व ले पाती है। अर्थात् भूमि में पर्याप्त मात्रा में पोषक तत्व होने पर भी पौधे उनका उपयोग नहीं कर पाते तथा पौधों की सामान्य वृद्धि नहीं होती है और पौधे कमजोर रह जाते हैं।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

4) **लाभदायक सूक्ष्म जीवों के कार्य में बाधा** - भूमियों में सूक्ष्म जीवों की उचित क्रियाशीलता के लिए उचित ताप व वायु की आवश्यकता होती है, लेकिन भूमि अधिक पानी होने की वजह से दोनों चीजों का अभाव हो जाता है और सूक्ष्म जीव अपना कार्य नहीं कर पाते।

5) **हानिकारक लवणों का इकट्ठा होना**-उपयुक्त जल न होने की वजह से भूमि की ऊपरी सतह में एकत्रित लवण, पौधों की वृद्धि पर विषैला प्रभाव डालते हैं। लवणों की अधिक मात्रा होने पर भूमि ऊसर हो जाती है।

6) **भूमि का दलदली होना** - भूमि सतह पर अधिक पानी इकट्ठा होने से व जल निकास प्रबंध के न होने की वजह से भूमि दलदली हो सकती है।

7) **पोषक तत्वों की हानि** - पानी की अधिकता के कारण भूमि के पोषक तत्व निक्षालन द्वारा नष्ट हो जाते हैं तथा पौधों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

8) **बुवाई में देरी** - खेतों में पानी अधिक समय तक भरे रहने के कारण अगली फसल की बुआई में देरी होती है और उपज में कमी होती है।

पेयजल और आपूर्ति (Drinking Water & Supply)

पेयजल मानव जीवन की अनिवार्य बुनियादी आवश्यकता है। इसकी लगातार कम हो रही उपलब्धता गंभीर चिंता का विषय है। भारत सहित पूरी दुनिया में लगभग एक अरब ऐसे लोग हैं, जो पानी की अत्यधिक कमी से जूझ रहे हैं और पानी से संबंधित बीमारियों से असमय ही काल कवलित हो रहे है। ग्लोबल एनवायरमेंट आउटलुक रिपोर्ट बताती है, कि पृथ्वी की एक तिहाई जनसंख्या पानी की कमी की समस्या का सामना कर रही है। इसी रिपोर्ट के अनुसार सन् 2032 तक विश्व की लगभग आधी जनसंख्या पानी की भीषण कमी से पीड़ित हो जाएगी। जल की अतिवृष्टि एवं उसके द्वारा उत्पन्न होने वाली बाढ़ से हर कोई भलीभांति परिचित है, किन्तु इसकी कमी किसी जंग का कारण भी बन सकती है। यह सामान्य लोगों की कृपना से परे है कि, जमीनी सच्चाइयां तेज गति से बदल रही हैं और विश्वभर में जो, परिस्थियां निर्मित हो रही हैं, उससे लगता है कि आने वाले समय में जल मानव जीवन के हर स्तर पर विवादों का प्रमुख कारण बन जाएगा।

पेयजल के संकट से भारत भी अछूता नहीं है। शहर तो शहर, ग्रामीण क्षेत्र भी पेयजल अभाव के घोर संकट से ग्रस्त हैं। देश के ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल संकट की स्थिति यह हैं कि गर्मी शुरू होते ही भू-जल स्तर में भारी गिरावट के साथ पानी की किलत शुरू हो जाती है। वर्तमान में देश के कई क्षेत्रों में भू-जल के अति दोहन के कारण इसका स्तर 50 फीट से भी नीचे गिर गया है। मध्य प्रदेश के इंदौर संभाग में भू-जल का स्तर 400 फीट, उज्जैन संभाग में 500 फीट तथा सागर संभाग में 600 फीट नीचे पहुंच गया है। महाराष्ट्र, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, उड़ीसा, मध्य प्रदेश के मालवा और बुन्देलखण्ड आदि क्षेत्रों में ग्रीष्म ऋतु में टैंकरों द्वारा पेयजल पहुंचाया जाता है। पेयजल को लेकर मोहल्ले-मोहल्ले, गांव-गांव, घर-घर में लोगों को आपस में झगड़ते देखा जा सकता है। स्थिति ऐसी हो जाती है कि, कहीं-कहीं महिलाओं को मीलों दूर से पसीना बहाते हुए पानी ढोना पड़ता है, तो कहीं सूखे के कारण गांव के गांव खाली होने लगते हैं। भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर विद्यमान पेयजल संकट के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं -

1) अनियमित वर्षा के कारण पानी की कमी।

2) उपलब्ध पानी का सही और उचित उपयोग न हो पाना।

3) जमीन के भीतर पानी का पुनर्भरण न किया जाना।

4) जमीन के अन्दर से अत्यधिक पानी निकालना।

5) तेजी से बढ़ता जल प्रदूषण।

बदलता मौसम चक्र तथा पारिस्थितिकीय असंतुलन इस ओर इशारा करता है कि भविष्य में जलसंकट और बढ़ेगा। जल और समकालीन अन्य समस्याओं में एक अंतर यह भी है कि जहां शेष अन्य समस्याओं से आसानी से निपटा जा सकता है, वहीं जल संकट विकराल रूप धारण कर लेता है, क्योंकि इसके बिना जीवन जीना मुश्किल हो जाता है। स्पष्ट है कि इस समस्या के समाधान हेतु हमें तत्काल ही सामूहिक प्रयास करने होंगे। वर्षा की बूंदों को सहेजना होगा तथा जल का उपयोग विवेकपूर्ण तरीके से सोच समझकर करना होगा।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

ज्ञातव्य है कि हमारी परम्परागत जल सरंचनाओं ने देश के भू-जल भण्डारों को भर रखा था, पर वे संरचनाएं आज कई कारणों से संकट के दौर में हैं। इनमें से अतिदोहन के कारण कई भू-जल स्रोतों का शोषण बढ़ता ही जा रहा है। प्रकृति ने देश में पानी उतना कम नहीं दिया है, जितना कि विकास के नाम पर बनी योजनाओं ने सोख लिया है। अंधाधुंध नलकूपों ने कुंए सुखा दिए हैं और आबादी के दबाव ने तालाबों को पाट दिया है। खेती की जल सतह ने बरसाती नदी, नालों व तालाबों के एरिया को समतल कर दिया है।

- **ग्रामीण भारत में पेयजल समस्या**
  - भारत की करीब 84 करोड़ ग्रामीण जनता में से केवल 18 प्रतिशत को ही स्वच्छ (ट्रीट) किया गया पानी उपलब्ध हो पाता है। इसकी तुलना अगर मोबाइल फोनधारकों से करें, तो यह लगभग 50 प्रतिशत है।
  - स्वच्छ (ट्रीट) किए हुए पानी की उपलब्धता राज्यों के आधार पर बदलती रहती है। आन्ध्र प्रदेश में जहां 36 प्रतिशत ग्रामीण जनता को स्वच्छ पानी मिलता है, वहीं बिहार में मात्र 2 प्रतिशत को।
  - देश में केवल 1/3 ग्रामीण परिवारों को पाइप से पानी की आपूर्ति होती है। वर्ष 2011 की जनगणना के मुताबिक ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लगभग 69 करोड़ लोगों को पीने का साफ पानी उपलब्ध नहीं है।
  - विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुमान के अनुसार, हर साल 3.8 करोड़ लोगों को पानी के कारण कई तरह की बीमारियां होती हैं। इनमें 75 प्रतिशत बच्चे होते हैं। अशुद्ध पानी के कारण लगभग 8 लाख मौतें प्रतिवर्ष होती हैं।
  - पानी की गुणवत्ता स्तर सूचकांक के 122 देशों में भारत का स्थान 120वां है।
  - देश में जनता को स्वच्छ पेयजल उपलब्ध कराने की शुरुआत 1949 से मानी जाती है, जब भारत सरकार की ओर से ग्रामीण स्तर पर स्वच्छ पेयजल प्रदान करने पर बल दिया गया।
  - 1969 में यूनीसेफ की तकनीकी मदद से 12 लाख बोरवेल खोदे गए और पाइप लाइन के जरिए जल आपूर्ति की 17,000 योजनाएं शुरू की गई।
  - देश के ग्रामीण इलाकों में लगभग 85 प्रतिशत जनसंख्या अपने दैनिक काम-काज के लिए पूरी तरह से भू-जल पर निर्भर है और यह लगातार कम हो रहा है।

❐ त्वरित ग्रामीण जल आपूर्ति कार्यक्रम (Accelerated Rural Waer Supply Programme - ARWSP)

ग्रामीण क्षेत्रों में स्वच्छ पेयजल आपूर्ति की व्यवस्था करने की जिम्मेदारी राज्यों की है। पेयजल आपूर्ति की गति में तेजी लाने के लिए राज्यों तथा संघशासित प्रदेशों को मदद पहुंचाने के लिए केन्द्र सरकार ने वर्ष 1972-73 में त्वरित ग्रामीण जल आपूर्ति कार्यक्रम प्रारंभ किया था। इसका उद्देश्य राज्य क्षेत्र के न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अधीन राज्य सरकारों के प्रयासों में सहायता देकर ग्रामीण लोगों को स्वच्छ तथा पर्याप्त पेयजल सुविधाएं प्रदान करना है।

ग्रामीण जल आपूर्ति क्षेत्र में अधिक-से-अधिक वैज्ञानिक एवं तकनीकी जानकारी पहुंचाने के लिए पूरे कार्यक्रम को एक मिशन का रूप दिया गया। तद्नुसार वर्ष 1986 में पेयजल तथा इससे सम्बन्धित जल व्यवस्था पर भारत सरकार ने राष्ट्रीय पेयजल मिशन (National Drinking Water Mission - NDWM) की स्थापना की। 1991 में इसका नाम बदलकर राजीव गांधी पेयजल मिशन (Rajiv Gandhi National Drinking Water Mission - RGNDWM) कर दिया गया था। इसके अतिरिक्त सरकार के राष्ट्रीय एजेंडा के अनुरूप 5 वर्षों में देश के सभी ग्रामीण निवासियों को स्वच्छ पेयजल उपलब्ध कराने के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अक्टूबर, 1999 में ग्रामीण विकास मंत्रालय के अन्तर्गत एक पेयजल आपूर्ति विभाग बनाय गया।

❐ राष्ट्रीय ग्रामीण पेयजल कार्यक्रम

ग्रामीण पेयजल आपूर्ति राज्य का विषय है, जो कि भारतीय संविधान की 11वीं अनुसूची में सम्मिलित है। विदित है कि 74 वे संविधान संशोधन के द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल आपूर्ति की जिम्मेदारी राज्य द्वारा पंचायतों को सौंपी गई है। देश के समस्याग्रस्त गांवों में पेयजल उपलब्ध कराने हेतु भारत सरकार द्वारा सर्वप्रथम सन् 1972-73 में त्वरित ग्रामीण जल आपूर्ति कार्यक्रम शुरू किया गया। इस कार्यक्रम के द्वारा राज्यों एवं केंद्र शासित प्रदेशों के समस्याग्रस्त गांवों में पेयजल आपूर्ति योजना को क्रियान्वित करने के लिए वित्तीय एवं तकनीकी मदद उपलब्ध कराई जाती थी। इसी क्रम में पानी की निरंतर कम होती उपलब्धता तथा आपूर्ति के समाधान हेतु 1 अप्रैल 2009 में ग्रामीण पेयजल आपूर्ति कार्यक्रम में संशोधन किया गया।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

इस संशोधित कार्यक्रम को राष्ट्रीय ग्रामीण पेयजल कार्यक्रम के नाम से जाना जाता है। इसके प्रमुख केंद्र बिंदु निम्नलिखित है –

- पेयजल आपूर्ति के दायरे को आगे बढ़ाकर प्रत्येक घर तक जल की आपूर्ति सुनिश्चित करना।
- पेयजल की एक स्रोत पर अत्यधिक निर्भरता को कम कर पेयजल के कई वैकल्पिक स्रोत उपलब्ध कराना।
- पेयजल योजनाओं में जल की कमी को दूर करना तथा जल की निरन्तर उपलब्धता सुनिश्चित करना।
- परम्परागत जल संरचनाओं को पुनर्जीवित करना तथा समुदाय द्वारा जल संरक्षण की पद्धतियों को अपनाए जाने की प्रवृति को बढ़ावा देना।
- जल संवर्धन सम्बधित सभी कार्यक्रमों को ग्राम स्तर पर समन्वित करना।
- जल बजटिंग और ग्राम जल सुरक्षा योजना तैयार कर प्रत्येक घर तक सुरक्षित पेयजल आपूर्ति सुनिश्चित करना।
- प्राथमिक स्तर पर पेयजल परीक्षण हेतु ग्राम पंचायतों की क्षमता का विकास करना।
- पेयजल परीक्षण हेतु जिला एवं विकास खंड स्तर पर जल परीक्षण प्रयोगशाला स्थापित करना।
- ग्रामीण स्कूलों में पेयजल शुद्धिकरण हेतु पेयजल आपूर्ति गाइडलाइन के साथ जल गुणवत्ता, मॉनिटरिंग एवं निगरानी को जोड़ना।
- ग्रामीण पेयजल योजनाओं के प्रबंधन का कार्य पंचायती राज संस्थानों को हस्तांतरित किए जाने को प्रोत्साहित करना।
- देश के ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल प्रबंधन व्यवस्था को सुधारने के लिए यह आवश्यक है, कि गांव के लोगों को इसके लिए तैयार किया जाए और पेयजल समस्या के समाधान में की जिम्मेदारी को निर्वहन सुनिश्चित किया जाए।

❐ स्वजलधारा कार्यक्रम

ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल की समस्या के समाधान के लिए एक नए स्वजलधारा कार्यक्रम की शुरुआत केन्द्र सरकार ने 25 दिसम्बर, 2002 में की है। इस कार्यक्रम का लक्ष्य 2004 तक सभी गांवों में पेयजल उपलब्ध करना था। यह कार्यक्रम 8 राज्यों (आन्ध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल, ओडीशा, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश एवं उत्तर प्रदेश) से प्रारंभ किया गया। इस कार्यक्रम के तहत् 882 परियोजनाएं क्रियान्वित की गई।

ग्राम पंचायतों के माध्यम से लागू किए जाने वाले इस कार्यक्रम के तहत् गांववासियों को कुएं व बावड़ी बनाने एवं हैण्डपम्प लगाने की सुविधा प्रदान की गई है। योजना लागत का केवल 10 प्रतिशत भाग ही ग्रामवासियों को वहन करना होगा, शेष 90 प्रतिशत राशि केन्द्र सरकार द्वारा दी जाएगी।

❐ पेयजल कार्यक्रम के प्रबंधन में जनभागीदारी

राष्ट्रीय ग्रामीण पेयजल कार्यक्रम की सर्वोच्च प्राथमिकता पेयजल स्रोतों एवं व्यवस्थाओं में जल की कमी को दूर कर जल की निरंतर उपलब्धता सुनिश्चित करना है। वर्षा के जल का संरक्षण कर जल के संसाधनों का संवर्द्धन तथा प्राकृतिक तरीके से गुणवत्तापूर्ण जल की आपूर्ति को बढ़ाना है। इसके लिए जनप्रतिनिधियों, विशेषकर ग्राम पंचायतों के पंच तथा सरपंचो को जल संरक्षण के इस पावन कार्य को आगे बढ़ाना होगा। उन्हें अपने क्षेत्र के लोगों को इस हेतु जिम्मेदारी निभाने के लिए तैयार करना होगा,ताकि पेयजल योजनाओं का सही ढंग से क्रियान्वयन हो सके तथा प्रत्येक घर तक शुद्ध पेयजल की निर्बाध आपूर्ति को सुनिश्चित किया जा सके। ज्ञात हो कि वर्तमान में देश के कुल 372 जिलों में राष्ट्रीय साक्षरता मिशन द्वारा साक्षर भारत कार्यक्रम संचालित किया जा रहा है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत पंचायत स्तर पर लोक शिक्षा केन्द्र स्थापित किए गए हैं, जिनके संचालन एवं प्रबंधन की जिम्मेदारी ग्राम पंचायतों को सौंपी गई है। जनता से जमीनी स्तर पर संवाद स्थापित करने वाले ये लोक शिक्षा केन्द्र राष्ट्रीय ग्रामीण पेयजल प्रबंधन में जन भागीदारी को बढ़ाने में काफी मददगार हो सकते हैं।

❐ पेयजल गुणवत्ता की मॉनिटरिंग एवं निगरानी

ग्रामीण समुदाय में शुद्ध एवं सुरक्षित पेयजल की गुणवत्ता के प्रति समझ विकसित कर उन्हें इस गुणवत्ता को निर्धारित करने हेतु सक्षम बनाना आवश्यक है। इसके लिए सन् 2006 में पेयजल की गुणवत्ता निर्धारण हेतु मॉनिटरिंग एवं निगरानी कार्यक्रम शुरू किया गया। इसके प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं –

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

- सूचना, शिक्षा एवं संचार के माध्यम से समुदाय में पानी की निम्न गुणवत्ता, अस्वच्छता तथा गन्दगी से उत्पन्न होने वाली स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं एवं बीमारियों के प्रति जागरूकता का विकास करना।
- प्रत्येक ग्राम पंचायत में 5 ग्रामीणों एवं कार्यकर्ताओं को पेयजल स्रोतों के परीक्षण हेतु प्रशिक्षण की व्यवस्था करना।
- 5 ग्रामीण कार्यकर्ताओं के साथ-साथ, 5 व्यक्ति विकासखण्ड स्तर से, 4 व्यक्ति जिला स्तर से तथा 2 व्यक्ति राज्य स्तर से भी प्रशिक्षित किए जाने की व्यवस्था करना।
- 1 अप्रैल, 2009 से लागू इस कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रत्येक ग्राम पंचायत को 100 प्रतिशत केन्द्रीय अनुदान द्वारा क्षेत्रीय जल परीक्षण किट उपलब्ध कराना।

राष्ट्रीय ग्रामीण पेयजल कार्यक्रम के अन्तर्गत राज्य द्वारा प्रत्येक ग्रामीण परिवार को 55 लीटर प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन के मान से पेयजल उपलब्ध कराने की प्रतिबद्धता व्यक्त की गई है। परिवार मूलक जलप्रदाय व्यवस्था सुनिश्चित करने के लिए सन् 2001 की जनगणना के अनुसार 1000 से अधिक जनसंख्या वाले गांव में नल-जल योजना पंचायतों के माध्यम से क्रियान्वित की जा रही है। 1000 से कम जनसंख्या वाले गांव में हैंडपंप योजना के द्वारा प्रत्येक घर को पेयजल के दायरे में लाया जाना है। इस योजना के तहत सभी ग्रामीण परिवारों को 500 मीटर की परिधि में पेयजल उपलब्ध कराने तथा पहाड़ी क्षेत्र में 30 मीटर की ऊंचाई के अन्तर्गत पेयजल की उपलब्धता सुनिश्चित करने हेतु सभी योजनाओं को ग्राम पंचायतों में गठित जल एवं स्वच्छता प्रबंधन समितियों के माध्यम से नियोजित एवं क्रियान्वित किए जाने की रणनीति अपनाई गई है।

वर्षा जल के संवर्धन हेतु सामुदायिक प्रयास तथा सरकार द्वारा चलाए जा रहे पेयजल कार्यक्रम से ग्रामीण क्षेत्र के लोगों को आवश्यकतानुसार शुद्ध पेयजल की आपूर्ति की जा सकती है। इसके लिए आवश्यक है कि पेयजल प्रदाय एवं स्वच्छता से संबंधित योजनाओं के विधिवत संचालन हेतु ग्राम पंचायत प्रबंधन समिति के लोग पानी की शुद्धता एवं मानक से जुड़े पहलुओं से अवगत हों। सामान्य भाषा में रंगीन, गंधहीन तथा स्वादयुक्त पानी को शुद्ध पेयजल कहा जाता है, परन्तु पेयजल की शुद्धता के कुछ मानक वैज्ञानिक तौर पर निर्धारित हैं, जिनके आधार पर पेयजल की शुद्धता निर्धरित की जाती है। ये मानक हैं - रंग, गंध, स्वाद, ठोस पदार्थ, अवक्षेपित क्लोरीन, फ्लोराइड, क्लोराइड्स, निकिल आदि की निर्धारित मात्रा में उपस्थिति-अनुपस्थिति। यह भी आवश्यक है कि पेयजल की शुद्धता की जांच निकट के जल परीक्षण केंद्र में प्रतिवर्ष कराई जाए। परीक्षण हेतु कम से कम 20 लीटर शुद्ध पेयजल एक साफ बर्तन में परीक्षण केंद्र में ले जाना आवश्यक होता है। इस परीक्षण प्रक्रिया को सहज बनाने के लिए पंचायतों तथा उन ग्रामों में जहां विज्ञान विषय के स्कूल हैं, वहां पर भी जल परीक्षण किट भारत सरकार द्वारा उपलब्ध कराई गई है। इस संबंध में और अधिक जानकारी के लिए नजदीकी लोक स्वास्थ्य यांत्रिकी विभाग से संपर्क किया जा सकता है। स्पष्ट है कि ग्रामीण क्षेत्रों में उपलब्ध पेयजल के उपयोग से पूर्व इसकी शुद्धता सुनिश्चित करने तथा इसे पीने योग्य बनाए रखने के लिए इसका उचित संधारण तथा शुद्धिकरण किया जाना अति आवश्यक है। यह कार्य घरेलू शुद्धिकरण की विभिन्न विधियों, जैसे - छानना, उबालना, निथारना, फिटकरी तथा क्लोरीन की गोली आदि का उपयोग कर किया जा सकता है। इसके अलावा घर में पानी का उपयोग करते समय निम्नलिखित अन्य सावधनियां भी बरती जानी चाहिए -

- पेयजल को हमेशा ढ़ककर जमीन से ऊंचे स्थान पर रखना।
- जल स्रोतों के आस-पास हमेशा स्वच्छता बनाए रखना।
- पेयजल को हमेशा लम्बी डंडी वाले बर्तन से निकालना।
- पेयजल स्रोत के आस-पास गन्दा पानी एकत्रित नहीं होने देना।
- कुओं, तालाब आदि का पानी साफ रहे, इसके लिए आवश्यक है कि उसमें कचरा तथा पूजा-सामग्री नहीं डाली जाए तथा सम्भव हो तो नहाने और कपड़े धोने आदि का काम भी नहीं किया जाए।
- यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि शौचालय का निर्माण जल स्रोत से कम से कम 15 फीट की दूरी पर हो।

सेल (SAIL) अपने नगरों तथा आसपास के क्षेत्र में लगातार पेयजल की आपूर्ति कर रहा है। इसके प्रत्येक कारखाने ने अपनी इस्पात नगरी के 16 किमी के क्षेत्र के गांवों में पेयजल सुविधा उपलब्ध कराई है। इसके लिए हैण्डपम्प, बोरवेल, ओवरहैड टैंक, तालाब, नल सहित 5,153 जल स्रोत स्थापित किए गए हैं। यही नहीं पानी एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचाने के लिए पाइप लाइनें भी बिछाई गई हैं। सेल ने 38.63 लाख लोगों को पेयजल उपलब्ध कराया है तथा इन्हें प्रतिदिन कम से कम 20 लीटर पानी दिया जाता है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS